विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-धारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१८ मार्च—१९९९ अंक—३

रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार)

फार्म—४

(नियम ८ देखिए)

विवेक शिखा

१. प्रकाशन स्थान : छपरा

२. प्रकाशन की आवर्तता : मासिक

३. मुद्रक का नाम : डॉ केदार नाथ लाभ

४. प्रकाशक का नाम : श्रीमती गंगा देवी
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ
पता—रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर, छपरा
(बिहार)

५. सम्पादक का नाम : डॉ० केदार नाथ लाभ
क्या आप भारत के नागरिक हैं : हाँ
पता—रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर
छपरा-८४१३०१

६. उन व्यक्तियों के नाम व पता जो समाचार पत्रों के स्वामी हों तथा जो समस्त पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार हों। — श्रीमती गंगा देवी, रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर, छपरा-८४१३०१ (बिहार)

मैं, गंगा देवी, एतद् द्वारा घोषित करती हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

ह०/गंगा देवी
प्रकाशक

इस अंक में

		पृष्ठ
१. श्रीरामकृष्ण ने कहा है		१
२. विनय	गोस्वामी तुलसी दास	२
३. अग्नि मंत्र	स्वामी विवेकानन्द	३
४. तुलसी के राम	स्वामी निखिलात्मानन्द	५
५. जननी सारदा देवी	स्वामी गौरीशानन्द	१०
६. स्वामी ब्रह्मानन्द के संस्मरण	स्वामी अखिलानन्द	१४
७. महावीर को पूजें या समझें	आचार्य महाप्रज्ञ	२१
८. संत तुकाराम की भक्ति साधना	कैलास प्रसाद सिंह 'स्वच्छन्द	२४
९. सेवायज्ञ का एक निदर्शन (प्रेरक-प्रसंग)		२६
१०. बोधकथा	राकेश सिंह	२९
११. समाचार एवं सूचनाएँ		३०

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की हिन्दी मासिकी

वर्ष—१८ मार्च—१९९९ अंक—३

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

सम्पादक।

डा० केदारनाथ लाभ

सहायक सम्पादक :

ब्रजमोहन प्रसाद सिन्हा

सम्पादकीय कार्यालय :

विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर
छपरा—८४१३०१
(बिहार)
फो : ०६१५२-२१६३९

सहयोग राशि :

आजीवन सदस्य—	७०० रु०
वार्षिक—	५० रु०
रजिस्टर्ड डाक से	६५ रु०
एक प्रति—	५ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

☐ प्रार्थना कैसे की जाए, यही मुख्य है। संसार की वस्तुओं के लिए प्रार्थना नहीं करनी चाहिए, नारद की तरह प्रार्थना करनी चाहिए। नारद ने रामचन्द्रजी से कहा था, "हे राम! यही करो कि तुम्हारे चरण कमलों में मेरी शुद्ध भक्ति हो।" राम ने कहा, "तथास्तु। और कोई वर लो।" नारद ने कहा, "कृपा कर यह वर दो कि मैं तुम्हारी भुवनमोहिनी माया में मुग्ध न हो जाऊँ।" राम ने फिर कहा, "तथास्तु। कोई और वर माँगो।" नारद ने कहा, "नहीं भगवन्! मुझे और कुछ नहीं चाहिए।"

☐ राम, सीता और लक्ष्मण वनवास के लिए निकले। आगे-आगे राम चले, बीच में सीता और पीछे-पीछे लक्ष्मण। राम का सदा पूर्ण दर्शन पाने के लिए लक्ष्मण व्याकुल थे पर बीच में सीता के होने के कारण यह सम्भव न था। तब लक्ष्मण ने सीता से प्रार्थना की कि वे तनिक बाजू हट जाएँ; सीता के थोड़ा बाजू हटते ही लक्ष्मण की इच्छा पूरी हुई। उन्हें राम के दर्शन हुए। यही हाल ब्रह्म, माया और जीव का भी है। जब तक माया हट न जाए तब तक जीव ब्रह्म के दर्शन नहीं पा सकता।

☐ ईश्वर नित्य हैं; फिर वे लीला भी करते हैं···नरलीला में वे अवतार बनकर आते हैं। नरलीला कैसी होती है जानते हो? जैसे परनाले के भीतर से होकर बड़ी छत का पानी धड़धड़ करते हुए नीचे गिरता है। उसी सच्चिदानन्द की शक्ति मानो परनाले के भीतर से आ रही है। अवतार को सब लोग नहीं पहचान सकते। रामचन्द्र को भरद्वाज आदि केवल सात ही ऋषियों ने अवतार के रूप में पहचाना था। ईश्वर मनुष्य को ज्ञानभक्ति सिखाने के लिए नररूप धारण कर अवतीर्ण होते हैं।

पवित्र है। ईश्वर तुम्हें उन्नत करे, परन्तु जल्दी में कुछ कर न बैठना। पहले कर्म और साधना द्वारा अपने को पवित्र करो। भारत चिरकाल से दुःख सहता आ रहा है; सनातन धर्म दीर्घकाल से अत्याचारपीड़ित है। परन्तु ईश्वर दयामय है। वह फिर अपनी सन्तानों के परित्राण के लिए आया है, पुनः पतित भारत को उठने का सुयोग मिला है।

श्रीरामकृष्ण के पदप्रान्त में बैठने पर ही भारत का उत्थान हो सकता है। उनकी जीवनी एवं उनकी शिक्षाओं को चारों ओर फैलाना होगा, हिन्दू समाज के रोम-रोम में उन्हें भरना होगा। यह कौन करेगा? श्रीरामकृष्ण की पताका हाथ में लेकर संसार की मुक्ति के लिए अभियान करनेवाला है कोई? नाम और यश, ऐश्वर्य और भोग का, यहाँ तक कि इहलोक और परलोक की सारी आशाओं का बलिदान करके अवनति की बाढ़ रोकनेवाला है कोई? कुछ इने-गुने युवकों ने इसमें अपने को झोंक दिया है, अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया है। परन्तु इनकी संख्या थोड़ी है। हम चाहते हैं कि ऐसे ही कई हजार मनुष्य आयें और मैं जानता हूँ कि वे आयेंगे। मुझे हर्ष है कि हमारे प्रभु ने तुम्हारे मन में उन्हीं में से एक होने का भाव भर दिया है। वह धन्य है, जिसे प्रभु ने चुन लिया। तुम्हारा संकल्प शुभ है, तुम्हारी आशाएँ उच्च हैं, घोर अन्धकार में डूबे हुए हजारों मनुष्यों को प्रभु के ज्ञानालोक के सम्मुख लाने का तुम्हारा लक्ष्य संसार के सब लक्ष्यों से महान् है। परन्तु मेरे बच्चे इस मार्ग में बाधाएँ भी हैं। जल्दबाजी में कोई काम नहीं होगा। पवित्रता, धैर्य तथा अध्यवसाय, इन्हीं तीनों गुणों से सफलता मिलती है, और सर्वोपरि है प्रेम। तुम्हारे सामने अनन्त समय है, अतएव अनुचित शीघ्रता आवश्यक नहीं। यदि तुम पवित्र और निष्कपट हो, तो सब काम ठीक हो जायेंगे। हमें तुम्हारे जैसे हजारों की आवश्यकता है, जो समाज पर टूट पड़ें और जहाँ कहीं जायें, वहीं नये जीवन और नयी शक्ति का संचार कर दें। ईश्वर तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करें।

सस्नेह आशीर्वाद के साथ,
विवेकानन्द

आन्तरिक बधाइयाँ

वाहे गुरु की खालसा ! वाहे गुरु की फतह !!

३० मार्च १६९९ को गुरु गोविन्द सिंह ने खालसा पंथ की स्थापना की थी।

× × × ×

खालसा पंथ की स्थापना की त्रिशताब्दी के पुनीत अवसर पर समस्त सिख बन्धुओं को हमारी आन्तरिक बधाइयाँ एवं शुभ कामनाएँ !

२५ मार्च, रामनवमी के अवसर पर :

तुलसी के राम

—स्वामी निखिलात्मानन्द
अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ; इलाहाबाद

भगवान राम का चरित्र अत्यन्त पुरातन है। उसको केन्द्र बनाकर अगणित काव्यों की रचना की गयी है। महर्षि वाल्मीकि उनके चरित्र के आदि रचयिता माने गये हैं। गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित राम चरित मानस भी ४०० वर्षों से भी अधिक पुराना है। वाल्मीकि और गोस्वामीजी द्वारा रचित श्रीराम के चरित्र में एक विशेष अन्तर परिलक्षित होता है। जहाँ वाल्मीकि ने श्रीराम के चरित्र की मानवीय रूप से अवतारणा की है वहाँ गोस्वामीजी श्रीराम का चरित्र चित्रण ईश्वर के रूप में करते हैं। तुलसी के राम साक्षात् परब्रह्म हैं जो मानव रूप में अवतरित हो लीला करते हैं। गोस्वामीजी उनके प्रत्येक कार्य के पीछे ईश्वरत्व की अनुभूति करते हैं। वाल्मीकि द्वारा रचित राम चरित में मानवीय गुणों का अधिक समावेश है। इसीलिए प्रायः यह कहा जाता है कि यथार्थ रामायण वाल्मीकिजी की है, गोस्वामी जी द्वारा रचित रामचरितमानस तो कल्पना प्रसूत है। पर गोस्वामीजी उस विचार से सहमत नहीं। उनकी दृष्टि में रामचरित मानस की तो बात क्या, संसार में जितनी भी रामायणें हैं, सभी सत्य हैं। और रामायणें भी कितनी? वे कहते हैं—रामायण सत कोटि—सौ करोड़ रामायणें हैं। पर इतना कहकर भी उन्हें सन्तुष्टि नहीं होती। इसलिए आगे कह उठते हैं—रामायन सतकोटि अपारा केवल सौ करोड़ नहीं अगणित रामायणें हैं। और ये सारी की सारी उनकी दृष्टि में सत्य है, कोई कल्पना नहीं। मन में सहज प्रश्न जाग उठता है कि सभी रामायणों को सत्य कैसे मानें जबकि उनमें घटनाओं का तारतम्य नहीं है। देश, काल और पात्र भी बदले हुए हैं। उदाहरण के लिए यदि दो रामायणों—रामचरितमानस और अध्यात्म रामायण की घटनाओं को लें तो अन्तर स्पष्ट हो जायगा। रामचरितमानस में भगवान राम की केवट से मुलाकात तब होती है जब वे वनवासी हो चित्रकूट की ओर जा रहे हैं, और अध्यात्म रामायण में दोनों की भेंट तब दर्शायी गयी है जब श्रीराम जनकपुर की ओर प्रस्थान करते हैं। यहाँ देश और काल दोनों ही भिन्न हैं। एक ओर जनकपुर की यात्रा तो दूसरी ओर चित्रकूट की, और दोनों यात्राओं के बीच बारह वर्षों का अन्तराल है। फिर दोनों सत्य कैसे हुए? गोस्वामीजी इसके समाधान में एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं—जब भगवान राम लंका विजय कर पुष्पक विमान में आरूढ़ हो अयोध्या के निकट पहुँचे तो देखते हैं कि सारे अयोध्यावासी प्रेम विह्वल हो उनकी प्रतीक्षा कर रहे है। लाखों की भीड़ है और सभी के मन में यही भावना है कि प्रभु विमान से उतर कर यदि मुझसे पहले मिलें तो कितना उत्तम हो। एक बालक सोच रहा है कि प्रभु आकर यदि मुझे अपनी गोद में उठा लें तो कितना अच्छा हो। प्रभु का मित्र सोच रहा है, यदि राघवेन्द्र आकर प्रथम मुझे आलिंगन पाश में बाँध लें तो कितना आनन्द आये। सभी इसी प्रकार सोच रहे है। श्रीराम तो अन्तर्यामी है, सबके मन की बात जान जाते हैं। वे एक

चमत्कार करते हैं। क्या? गोस्वामीजी ने लिखा—

प्रेमातुर सब लोक निहारी।
कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी॥
अमित रूप प्रगटे तेहि काला।
जथा जोग मिले सबहि कृपाला॥

उन्होंने अपने अगणित रूप धारण कर लिए और जो जिस भाव से मिलना चाहता था उससे उसी प्रकार मिले। जितने अयोध्यावासी, उतने राम! और सभी यही अनुभव करते हैं कि प्रभु प्रथम मुझसे ही मिले। गोस्वामीजी कहते हैं—अब प्रत्येक व्यक्ति जब भगवान राम से हुई अपनी भेंट का वृतान्त कहेगा तो प्रत्येक के वर्णन में भिन्नता होगी पर प्रत्येक का वृतान्त सत्य है। जैसे एक बालक कहेगा कि जब प्रभु का विमान नीचे उतरा तो मैं विमान के पास ही था। प्रभु ने आकर मुझे अपनी गोद में उठा लिया और प्यार किया। प्रभु का मित्र कहेगा कि मैं तो विमान से बहुत दूर एक वृक्ष के नीचे खड़ा हुआ था। मैंने देखा कि राघवेन्द्र ने हजारों की भीड़ में से आकर मुझे अपने प्रेम पाश में बाँध लिया। गोस्वामीजी का तात्पर्य है कि जब जितने अयोध्यावासी उनकी उतनी रामायणें और प्रत्येक रामायण भिन्न होते हुए भी सत्य हुई कि नहीं? उसी प्रकार प्रभु के चरित्र को लेकर जितनी रामायणें लिखी गयी है वे सभी सत्य हैं। अन्तर केवल यह है कि वाल्मीकि की रामायण इतिहास परक है जबकि अन्य रामायणें भाव परक।

कई लोग आक्षेप करते हैं कि गोस्वामीजी ने श्रीराम को ईश्वर के रूप में प्रतिपादित करके उन्हें हमसे दूर कर दिया। यदि वे उनका चित्रण मनुष्य के रूप में करते तो हम उनके चरित्र से प्रेरणा प्राप्त कर उनके गुणों को ग्रहण करने में समर्थ होते। पर ईश्वर के रूप में राम जन-साधारण की पहुँच के परे हो गये। यह तर्क को समीचीन प्रतीत नहीं होता। यदि श्रीराम क चित्रण एक मनुष्य के रूप में किया जाता तो इतिहास की गाथा मात्र होते तथा एक देश औ काल विशेष के लिए ही आदर्श होते। उनक चरित्र हमारी वर्त्तमान समस्याओं का समाधा करने में समर्थ नहीं हो पाता। पर ईश्वर के रू में हम चाहे जब श्रीराम को अपने जीवन अवतरित कर सकते हैं तथा अपनी समस्याओं क हल उनसे प्राप्त कर सकते हैं। इसीलि गोस्वामीजी श्रीराम को अपने जीवन से सत जुड़ा हुआ पाते हैं। गोस्वामीजी को चित्रकू बड़ा प्रिय था। वे बारम्बार जाकर वहाँ निवा करते। भक्तों ने उनसे पूछा कि आप चित्रकू शायद इसलिए इतना अधिक जाते हैं कि वह भगवान राम ने कभी निवास किया था गोस्वामीजी ने कहा—कैसी बातें करते हो कि भगवान कभी चित्रकूट में थे। अब क्या वे वह नहीं हैं? वे सतत लक्ष्मण और जानकीजी साथ वहाँ विराजमान हैं—चित्रकूट महँ बसत प्र नित सिय लखन समेत। यही नहीं, गोस्वामी अपने को भगवान राम के जीवन की लीलाओं साथ भी युक्त पाते हैं। गीतावली में वे लिखते कि जब भगवान राम के जन्म की बेला आयी स्त्रियों ने बधैया गाया। भक्तों ने उनसे पूछा कि आपको कैसे पता चला कि उन्होंने यही गीत गाय क्योंकि अन्य रामायणों में इसका उल्लेख नहीं है गोस्वामीजी ने कहा—तहँ तुलसिहु मिलि गायो- अरे! गानेवालों में तो मैं भी सम्मिलित था उसी प्रकार जब प्रभु होली खेलते हैं तो सबक दान देते हैं। तुलसीदासजी वहाँ भी उपस्थि हो दान प्राप्त करते हैं और कहते हैं—तुलसीदा तहँ भगति दान बर माँगि—मैंने उनसे भक्ति क वरदान माँगा। अब कहाँ भगवान राम का जन आज से हजारों वर्ष पूर्व और गोस्वामीजी के जन

के ५०० वर्ष भी नहीं हुए। फिर कैसे गोस्वामीजी भगवान की लीलाओं में सम्मिलित हो पाये? यह प्रश्न स्वतः ही जागता है। यही भाव की दृष्टि है जहाँ देश और काल की बाधाएँ तिरोहित हो जाती हैं। त्रेतायुग में जब भगवान राम का जन्म हुआ तो गोस्वामीजी वहाँ उपस्थित थे और इस युग में जब गोस्वामीजी का जन्म हुआ तो वे भगवान राम की उपस्थिति का सतत अनुभव करते हैं। इसीलिए गोस्वामीजी ने श्रीराम का चित्रण ईश्वर के रूप में किया और उन्हें हमारे अत्यन्त निकट ला दिया। मनुष्य के रूप में श्रीराम हमसे बहुत दूर होते। पर इसका अर्थ हम यह भी न लें कि गोस्वामीजी श्रीराम को ऐतिहासिक पुरुष नहीं मानते और न यह ही कि श्रीराम का चरित्र एक प्रतीक अथवा कल्पना मात्र है। उनकी मान्यता यह है कि श्रीराम भले त्रेता-युग में अवतरित हुए हों पर वे मात्र भूतकाल के व्यक्ति नहीं। आज भी जब भक्त चाहता है वे अवतरित होने के लिए प्रस्तुत हैं।

वाल्मीकि रामायण की तुलना एक मन्दिर से की जा सकती है। रामायण का अर्थ ही है—राम का मन्दिर। पर गोस्वामीजी राम चरित की तुलना गंगा से करते हैं। वे कहते हैं—

पूछेउ रघुपति कथा प्रसंगा।
सकल लोक जनि पावनि गंगा॥

—भगवान राम की कथा समस्त लोकों को पवित्र करनेवाली गंगा के समान है। मन्दिर और गंगा दोनों ही पूज्य तथा पवित्र हैं। पर दोनों में थोड़ा पार्थक्य है। मन्दिर एक देश विशेष में अवस्थित होता है जबकि गंगा हिमालय से उद्भूत हो देश की दूरियों को पार करती हुई सागर में जाकर मिलित होती है। हिमालय से लेकर सागर पर्यन्त कहीं भी उसका सान्निध्य लाभ किया जा सकता है। मन्दिर समय पर खुलता और बन्द होता है। पर गंगा काल के व्यवधान को स्वीकार नहीं करती। उसके द्वार सबके लिए हरक्षण अबाध गति से खुले हुए हैं। मन्दिर में भक्त और भगवान के बीच दूरी बनी रहती है जबकि गंगा में कोई दूरी नहीं। उसमें कोई भी, कभी भी जाकर गोता लगाकर उसके साथ एक हो सकता है। मन्दिर कहता है—पहले स्नान करो, पवित्र होओ तब मेरे पास आओ। गंगा कहती है—तुम जैसे भी हो, मेरे पास चले आओ और गोता लगाकर पवित्र बन जाओ। वाल्मीकिजी द्वारा संस्कृत में रचित रामायण अनुपम कविता रूपी रत्नों से सुशोभित मन्दिर के समान पूज्य तथा शुद्ध है। वाल्मीकि के राम महान्, गम्भीर तथा अलभ्य गुणों से युक्त हैं और हम सहज ही उनसे दूरत्व का अनुभव करते हैं। पर तुलसी के राम गंगा की धारा की भांति हमारे अत्यन्त निकट हैं। लगता है कि वे हमारे कितने अपने हैं! ये दोनों दृष्टियाँ अपने स्थानों पर महत्त्वपूर्ण हैं पर श्रीराम तुलसी के द्वारा हमारे जीवन के जितने निकट पहुँचाये गये हैं, उतना वाल्मीकि के लिए सम्भव नहीं था। इसीलिए इस उक्ति पर कि 'बाल्मीकि तुलसी भयो'—वाल्मीकि ही तुलसी के रूप में आये, कोई आश्चर्य नहीं होता। तुलसी के रूप में अवतरित हो उन्होंने एक नयी दृष्टि से जनभाषा में राम-कथा का निर्माण कर श्रीराम को सारे जन मानस में उतार दिया।

जब तुलसीदासजी ने रामचरितमानस की रचना हिन्दी में की तो उन्हें बड़ी विरोधिता का सामना करना पड़ा। विरोधियों का तर्क था कि देवभाषा संस्कृत को छोड़ एक ग्राम्यभाषा में रामकथा का लेखन उचित नहीं है। पर गोस्वामी जी इससे विचलित नहीं होते। वे देवभाषा का विरोध नहीं करते और न ही लोकभाषा की

श्रेष्ठता का नारा बुलन्द करते हैं। भाषा का प्रश्न उठाये जाने पर वे कहते हैं—

का भाषा का संस्कृत प्रेम चाहिए साँच।
काम जु आवै कामरी का लै करिअ कुमाच ॥

—भाषा कोई भी हो चाहे देवभाषा हो अथवा जनता में बोली जाने वाली भाषा हो। सही भाषा वही है जो प्रभु के प्रति सच्चा प्रेम उत्पन्न कर सके। देवभाषा एक कीमती दुशाले के समान है और जनभाषा एक कम्बल के समान। एक साधारण व्यक्ति का जाड़ा यदि कम्बल से मिट जाए तो दुशाले की भला क्या आवश्यकता? उपयोगिता की दृष्टि से उन्होंने जनभाषा का प्रयोग किया ताकि साधारण व्यक्ति भी रामकथा को हृदयंगम कर सके। पर उन्होंने देवभाषा को तिरस्कृत नहीं किया। उन्होंने जितनी बन्दनाएँ लिखीं सब संस्कृत में। जब उनसे पूछा गया कि कौन सी भाषा श्रेष्ठ है तो उन्होंने कहा—

मनि भाजन मधु पारई पूरन अमी निहारि।
का छाड़िय का संग्रहिअ कहहु विवेक बिचारि ॥

—अगर मणिमय पात्र में शराब हो और मिट्टी के बर्त्तन में अमृत, तो आप क्या लेंगे? विवेक ज्ञान तो यही कहेगा कि अमृत युक्त मिट्टी के पात्र को ही ग्रहण करें और शराब से भरे मणिमय पात्र का त्याग करें। भाषा वही श्रेष्ठ है जिसके माध्यम से प्रभु कथा रूपी अमृत की प्राप्ति हो।

गोस्वामीजी की मान्यता है कि श्रीराम का अवतार केवल रावण, कुम्भकर्ण आदि कतिपय के नाश के लिए नहीं हुआ था। यदि रावण का नाश ही उनके अवतार का प्रयोजन होता तो रावण के समकालीन ऐसे कई व्यक्ति थे जिन्होंने रावण को परास्त किया था और वे अनायास ही रावण का नाश कर सकते थे। बालि और सहस्रार्जुन विशेषकर ऐसे दो व्यक्ति थे जिन्होंने श्रीराम के अवतरण के पूर्व ही रावण को हराया था। बालि ने न केवल उसे हराया ही था वरन् वह छः महीने तक उसे बगल में दबाकर सारे ससार में घूमता रहा था। वह चाहता तो रावण को मारना उसके लिए कोई बड़ी बात नहीं थी। सहस्रार्जुन ने भी नर्मदा तट पर रावण को परास्त किया था। फिर परशुराम भी समकालीन ही थे, जिन्हें अंशावतार कहा जाता है। उन्होंने रावण को जीतनेवाले सहस्रार्जुन को हरा उसकी हजार भुजाएँ काट डाली थीं। अतः उनके लिए भी रावण का संहार करना कोई बड़ी बात नहीं थी। तो फिर श्रीराम के अवतार की आवश्यकता क्यों पड़ी? गोस्वामीजी एक दृष्टांत के माध्यम से उसका उत्तर प्रस्तुत करते हैं—

लंका के रणांगण में जब श्रीराम रावण का नाश कर देते हैं तो देवतागण आकर तरह-तरह से उनकी स्तुति करते हैं कि प्रभो, आपने उस दुष्ट का नाश कर हम पर बड़ी कृपा की। यह सारे विश्व का द्रोही था, दुष्ट और कामी था। उस कुमार्गगामी ने अपने पापों का ही फल पाया—

विस्व द्रोहरत यह खल कामी।
निज अघ गयउ कुमारग गामी ॥

पर साथ ही देवताओं ने यह भी अनुभव किया कि यहाँ अन्य सब देवता तो हैं केवल भगवान शंकर नजर नहीं आ रहे हैं। किसी देवता ने टिप्पणी की कि शंकरजी शायद इसलिए नहीं आये क्योंकि रावण उनका प्रिय शिष्य था और शिष्य की मृत्यु पर गुरु का दुखी होना स्वाभाविक है। पर ऐसी बात नहीं। भगवान शंकर आते हैं—कब? गोस्वामीजी ने लिखा—

सुमन बरषि सब सुर चले चढ़ि चढ़ि रुचिर बिमान।
देखि सुअवसर प्रभु पहि आयउ संभु सुजान ॥

—जब देवता लोग स्तुति करके, श्रीराम पर फूल बरसा अपने सुन्दर विमानों पर चढ़कर चले

गये तब सुअवसर देख सुजान शंकर आये। गोस्वामीजी मानो व्यंग करते हैं कि जब अजानों की भीड़ छँट गयी तो सुजान शंकर आये। और वे आकर भगवान राम की प्रशंसा नहीं करते कि रावण का नाश कर उन्होंने बड़ा कल्याण किया, वरन् वे कह उठते हैं—

मामभिरक्षय रघुकुल नायक—प्रभो। मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए, बड़े आश्चर्य की बात! भगवान शकर भला किससे अपनी रक्षा की याचना कर रहे हैं। राबण, कुम्भकर्ण तथा सारे राक्षसगण तो काल कवलित हो चुके हैं। अब वे किससे त्राण चाहते हैं? यही भगवान राम के अवतार की वह अनूठी दृष्टि है जिसे गोस्वामी जी भगवान शंकर के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। शंकरजी का तात्पर्य था—प्रभो! आपने एक रावण तथा कुम्भकर्ण का नाश किया जिसके लिए देवताओं ने आकर आपकी प्रशंसा की। पर मेरी दृष्टि में रावण, कुम्भकर्ण और मेघनाद मरे नहीं हैं। वे अभी भी मोह, अहंकार तथा काम के रूप में हमारे अन्तःकरण में विद्यमान हैं। आपका अवतरण केवल रावण नाम के व्यक्ति के नाश के लिए नहीं, रावणत्व के नाश के लिए हुआ है जो दुर्गुणों के रूप में हमारे जीवन में विद्यमान है। इस रावणत्व से मेरी रक्षा कीजिए। यही शंकरजी की दृष्टि है, जिसके माध्यम से गोस्वामीजी कहते हैं कि आज जब हमारे अन्तःकरण में मोहरूपी रावण, अहंकाररूपी कुम्भकर्ण तथा कामरूपी मेघनाद विद्यमान हैं तो उनके नाश के लिए भगवान राम को जीवन में अवतरित करने की आवश्यकता है। तुलसी के राम केवल एक ऐतिहासिक पुरुष ही नहीं, सबके अन्तर्यामी ईश्वर हैं जो भक्तों की आन्तरिक पुकार पर प्रकट होने के लिए सदैव प्रस्तुत हैं।

स्वामी भूतेशानन्द स्मृति अंक

विवेक शिखा के दिसम्बर १९९८ अंक में हमने अपने पाठकों को सूचित किया था कि १९९९ का मार्च-अप्रैल अंक 'स्वामी भूतेशानन्द स्मृति अंक' के रूप में प्रकाशित होगा। किन्तु पूज्य महाराज का जन्म ८ सितम्बर १९०१ में होने के कारण, कुछ भक्तों की राय से यह अंक उनकी जन्म तिथि के अवसर पर प्रकाशित किया जायगा। अब अगस्त-सितम्बर १९९९ का अंक "स्वामी भूतेशानन्द स्मृति अंक" के रूप में प्रकाशित होगा। जो सज्जन अपनी प्रति सुरक्षित कराना चाहते हैं वे १५ रुपये अग्रिम मनीआर्डर द्वारा भेजकर अपनी प्रति सुरक्षित करा लेने की कृपा करें।

—व्यवस्थापक

जननी सारदा देवी (१)

स्वामी गौरीश्वरानन्द

[भाषण—स्थान : खड़गपुर दुर्गा मन्दिर, श्री रामकृष्ण जन्मोत्सव के अवसर पर, काल : १ अप्रैल १९७८, संरक्षण (कैसेट में) : डा० रामचन्द्र भट्टाचार्य, भावानुवाद : अरुणदेव भट्टाचार्य]

जननी सारदा देवी रामकृष्णं जगदगुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥

आप लोगों ने श्री श्री माँ के बारे में अनेक घटनाएँ सुनी हैं। यह अवश्य ही सुना है कि माँ और उनके भक्तों के बीच भाषा का व्यवधान रहता नहीं था। मुझे अपार सौभाग्य प्राप्त हुआ था उनकी चरण-सेवा करने का, उनके सान्निध्य में रहने का और उनकी कृपा प्राप्त करने का। जो सब बातें आपलोगों ने पुस्तकों में पढ़ी हैं अथवा सुनी हैं, उनमें बहुत सारी घटनाएँ मेरी आँखों देखी घटनाएँ हैं। एक घटना उस समय की है जब नारायण आयँगर जी बंगलोर में डिप्टी कमिश्नर थे। वे आये थे माँ से मिलने के लिए। मैं उस समय कालेज में पढ़ता था। नारायण आयँगर बंगला भाषा नहीं समझते थे और माँ अंग्रेजी नहीं समझती थीं। मैं नारायण आयँगर को हर रोज थोड़ा-थोड़ा वचनामृत अंग्रेजी में अनुवाद कर सुनाता था। मैं देखता था कि जिस शब्द का उचित शब्द अंग्रेजी में मैं बोलने में रुक जाता था वे तुरन्त उसको बता देते थे। माँ के साथ उनके वार्तालाप के समय मैं दोभाषिया का काम करता था। परन्तु मैंने देखा था अनुवाद के पहले बहुत बार दोनों ने ही यह बता दिया कि बात समझ में आ गयी है, अनुवाद करने की आवश्यकता नहीं है। यह सब घटनाएँ मुझको बहुत ही आश्चर्यजनक लगती थीं। लगता था जैसे प्रेम की भाषा है जो अपने आप ही समझ में आ जाती है।

निवेदिता की बातें आप सबने सुनी हैं। वे जिस दिन सर्वप्रथम माँ से मिलने आई थी, उस दिन माँ ने जिस अपार स्नेह का प्रदर्शन किया था उसका वर्णन करना कठिन कार्य है। एक दिन मैं माँ के कपड़े धूप में दे रहा था। निकला था एक फटा पुराना कपड़ा। मैंने कहा था, "माँ ! यह तो बहुत फटा पुराना कपड़ा हैं। मैं इसको फेंक देता हूँ जिससे इसकी जगह पर एक अच्छा कपड़ा रखा जा सकता है।" माँ ने उत्तर दिया था, "नहीं बेटा ! वह कपड़ा बच्ची (बंगला भाषा में खुकी) ने बहुत समादर से दिया है।" यह बच्ची हैं सिस्टर निवेदिता। कपड़ा रेशम (सिल्क) का था —आसाम सिल्क अथवा अंडी अथवा मूंगा—मैं जानता नहीं हूँ। माँ बोली थीं, "सूती के कपड़े सब जल्दी फट जाते हैं, यह कपड़ा बहुत दिनों तक चलता है। बहुत प्यार से बच्ची ने मुझको यह कपड़ा दिया है और मैंने पहना है इसको बहुत दिनों तक। बेटा, इसको फेंकना नहीं। इसको देखकर मुझको बच्ची की याद आती है। बच्ची कितनी अच्छी थी।" यह देखिए, एक फटा कपड़ा माँ ने रख दिया, निवेदिता की यादगारी में।

वह दिन भी याद आता है जिस दिन निवेदिता पहली बार आई थी माँ से मिलने। यहाँ भी भाषा दूसरी थी एक दूसरी से। स्वामीजी ने निवेदिता के साथ अपने शिष्य स्वरूपानन्द को भेजा था दोभाषिया का काम करने के लिए।

स्वामीजी निवेदिता को माँ के पास भेजते समय बहुत ही उद्विग्न थे क्योंकि उनको डर था कि गाँव से आयी माँ, कहीं निवेदिता को म्लेच्छ कहकर दूर न हटा दें। परन्तु माँ के पास स्वरूपानन्द जब निवेदिता को लेकर पहुँचे और परिचय दिया तो माँ ने उनको बड़ी प्रसन्नता से ग्रहण किया था। प्रणाम ग्रहण किया, चरण स्पर्श करने दिये और मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिये। नाम पूछने पर स्वरूपानन्द द्वारा अनुवाद करके बोलने पर निवेदिता बोली थी, "माई नेम इज मिस मार्गरेट एलिजाबेथ नोब्ल।" माँ ने उत्तर दिया था, 'बेटी! मैं उतना बड़ा नाम याद नहीं रख सकूँगी। मैं तुम्हें बच्ची (बँगला भाषा में खूकी) बोलकर पुकारूँगी। जब उनको अंग्रेजी में अनुवाद करके बताया गया तो वे बहुत ही खुश हुई। आनन्द से बोल पड़ी, "मैं माँ की बच्ची हूँ, मदर्स बेबी! माँ ने प्रसाद खाने को दिया है।" इस प्रकार अत्यधिक आनन्दित होकर स्वामीजी से वे कहती हैं गदगद् होकर, "माँ ने मुझको बहुत प्यार दिया है पर छूकर प्रणाम करने दिया है, सर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया है, प्रसाद दिया है और मुझको 'बेबी' नाम से पुकारेंगी ऐसा कहा है।" स्वामीजी ने इस पर बहुत खुश होकर स्वामी ब्रह्मानन्द (राजा महाराज) को कहा था, "ओह! मेरे सीने के ऊपर से जैसे दस मन का बोझा उतर गया। मुझको डर था कि गाँव से आयी माँ कहीं म्लेच्छ कहकर निवेदिता को दूर न हटा दें। ऐसा होने पर मैं बहुत ही दुखी होता।" निवेदिता, माँ के स्नेह से बिलकुल भरपूर हो गयी। यह आश्चर्यजनक घटना मेरी आँखों देखा है।

आपलोगों ने सुना है और पुस्तकों में पढ़ा है, माँ ने कहा है—"यदि शान्ति चाहो तब किसीका दोष मत देखना केवल गुण देखना। दोष केवल अपना देखना।" साधारणतः हमारी नजर दूसरों के दोषों के ऊपर ही जाती है। परन्तु माँ केवल दूसरों के गुणों को ही देखती थी। ऐसी एक घटना इस प्रकार की है। मेरे विद्यालय के प्रधान शिक्षक महाशय एवं उनके मित्र डा० नलिनी सरकार दोनों ही माँ के शिष्य थे। एकदिन जब मैं नलिनी बाबू के साथ खड़ा था एक माँ के शिष्य भक्त आये जिनका निवास निकट के गाँव में था। वे आकर माँ की चरणधूलि लेकर 'माँ कैसी हैं' आदि दो एक प्रश्न पूछ कर चले गये। उनके चले जाने के बाद ही नलिनी बाबू माँ से पूछ बैठे, "माँ, आपने उनको क्यों चरण स्पर्श करने दिया?" कारण क्या है मुझको मालूम नहीं। माँ ने उन पढ़े लिखे शिक्षक शिष्य के चरित्र के बारे में क्यों लोग कटाक्ष करते थे। माँ का उत्तर ऐसा था—"देखो बेटा! मैं सत् की भी माँ हूँ और असत् की भी। मेरी सन्तान यदि धूल धूसर होकर आये तो मैं तो माँ हूँ न! मैं उसे अपने आँचल से साफ सुथरा करके गोद में लूँगी।" ऐसी थी माँ—सबको अपने स्नेह आँचल से ढँक कर रखती थी, दोष किसीका देखती नहीं थी।

मुझसे लोग प्रश्न करते हैं कि माँ कभी डाँट भी लगाती थीं अथवा नहीं। मेरा उत्तर, "साधारणतः नहीं, परन्तु शिक्षा देने के लिए कभी कभी दो एक बात बोलती थीं।" ऐसी एक घटना की याद आती है। मेरे विद्यालय के प्रधान शिक्षक महोदय अस्सी रुपया तनखाह पाते थे जो उन दिनों में अच्छी ही थी। उन दिनों में हम दो रुपया मन चावल खरीदते थे। आलू का भाव था दश आना मन। आजका भाव आपलोग तो जानते ही हैं। प्रधान शिक्षक महोदय माँ को खुश करने के लिए टोकरी भरकर फल, मिष्टान, पान, सुपारी आदि लाते थे। इस प्रकार एक दिन वैसी टोकरी माँ के चरणों पर रखकर प्रणाम करके

सोच रहे थे कि माँ अवश्य ही प्रसन्न हुई होंगी। माँ बोली थी, "देखो बेटा ! ठाकुर की कृपा से मुझको अभाव नहीं है। तुम गृहस्थ हो। तुमने इतने रुपये क्यों खर्च किये ? तुम्हारे परिवार का भरण-पोषण, बच्चों की शिक्षा आदि का काम कैसे चलेगा यदि तुम इस प्रकार से खर्च करो।" एक कठोर बात भी बोली थी, "केश बढ़ने पर बन्दर उसको सँवारकर खोपा नहीं बाँध सकता है।" महिलाएँ केश वृद्धि होने पर सुन्दर संवारकर खोपा बाँधती हैं। परन्तु बन्दर उसको कुतरकर नष्ट करता है। मराठी महिलाए बहुत शोभनीय रूप से केश सँवारती हैं और उस पर वेणी फूल लगाती हैं। यह मैंने मुम्बई रहते समय देखा था। इस बात को सुनकर शिक्षक महोदय के मन में चोट पहुँची थी। माँ ने भी उसे समझाकर उस दिन जब शिक्षक महोदय प्रणाम करके घर लौट रहे थे तब उनसे कहा था, "देखो बेटा ! तुम गृहस्थ हो, तुमको थोड़ा संचय भी करना चाहिए। संचय करने पर ही तो साधु सेवा कर सकोगे। साधु संन्यासी सब तो पैसा नहीं कमाते हैं, तुमलोग संचय करके दोगे तभी तो उसको खाकर वे जीवन धारण करेंगे। तब शिक्षक महाशय शान्त हुए थे—उनके मन में माँ डाल दिया था कि संचय करने से केवल स्त्री-पुत्र, कन्या का भरण पोषण ही नहीं, साधु सेवा भी की जा सकती है। माँ ने इस तरह शान्त किया था।

इस तरह की घटना बाद में भी होते हुए मैंने देखी थी। ललित बाबू ने जयरामबाटी में एक होमियोपैथिक चिकित्सालय खोला था। उस समय ज्ञान महाराज थे जिनको शरत् महाराज ने जयरामबाटी के प्रथम महंत के रूप में नियुक्त किया था। चिकित्सालय, गरीबों के ईलाज के लिए मुख्यतः था। मुझसे शरत् महाराज ने जो रामकृष्ण मिशन के सचिव थे, कहा था, "माँ कलकत्ता जा रही हैं। यहाँ तुम देखभाल करना, ठाकुर सम्बन्धी पुस्तकों का अध्ययन करना, ठाकुर सेवा करना और डाक्टर जो दवा लिख देगें उसको तैयार कर देना।" ललित बाबू रुपये भेजते थे और ज्ञान महाराज को कहा था हिसाब रखने के लिए। ज्ञान महाराज, शरत् महाराज से हिसाब रखने की बात पर आपत्ति करते हुए बोले थे, मैं हिसाब नहीं रख सकूँगा और गृहस्थ का रुपया नहीं लूँगा।" इस पर शरत् महाराज ने उत्तर दिया था "गृहस्थ का रुपया नहीं लोगे, तब मैं तुम्हारे लिए कहाँ से परमहंस लाऊँ जो तुमको रुपया देगा। हम सब तो गृहस्थ भक्तों से धन ग्रहण करके ही जी रहे हैं। गृहस्थ की सहायता नहीं लेने पर कौन सा परमहंस तुमको रुपया देगा ? साधु, गरीबों की सेवा के लिए।" ऐसी थी धन के सदुपयोग की भावना।

यह बात उस समय की है जब मैं मुम्बई में था। मैंने वहाँ जाकर देखा था वहाँ गुलाब बिलकुल नहीं था। पूछने पर उन्होंने मुझको बताया था कि 'गुलाब' यहाँ होता नहीं है। उस स्थान की अत्यधिक वर्षा और पानी जमने की बात का मुझको पता नहीं था। मुझको गुलाब का विशेषतः शौक था और एक ही पेड़ पर विभिन्न रंगों का गुलाब बनाने की जानकारी थी। पहली बार जब मैंने गुलाब के लिए कोशिश की, तब भारी वर्षा और पानी इकट्ठा होने के कारण सफल नहीं हुआ था। दूसरी बार मैंने बड़े-बड़े गमले खरीदे थे। गमले रुपया में आठ के भाव से मिलते थे। उन गमलों में उस बार बहुत सुन्दर गेरुआ, पीला, आदि रंगों का गुलाब आया था जिसको देखकर वे सब खुश हो गये थे। इस तरह का एक ही पेड़ में विभिन्न प्रकार का आम जैसे लंगड़ा, हिमसागर, बम्बई आदि करने की जानकारी मुझे

है—कोई सीखना चाहे तो मैं उनको सिखा दे सकता हूँ। तब जब सुन्दर फूल बड़े बड़े आये तो एक समस्या हो गयी थी। मराठी महिलाएँ सुन्दर फूल आने पर ही उसे तोड़कर बेणीफूल लगा लेती थी। उसको मना करने पर भी वे कहती थीं, "सुन्दर सुन्दर फूल केश पर लगाने के लिए ही तो है। पूजा बेल, जुही से करिए न।" मैंने उनके हाथों से गुलाब बचाने के लिए गमले सब दूसरी मंजिल की छत पर धर दिया था। तब कहीं गुलाब बचा था। ऐसी घटना जयरामबाटी की भी है। वहाँ मैंने बहुत सारे फूल लगाये थे जिनमें एक पद्म करवीर भी था। उस पद्म करवीर पेड़ में सुन्दर फूल आ गया था। माँ ने ठाकुर पूजा के लिए भी फूल तोड़ने नहीं दिया था। उनका कहना था, "राममय ने इसे लगाया है, बेटे को आने दो, देखकर खूब खुश होगा। उसके बाद ठाकुर पूजा होगी।" अगले शनिवार को जब मैं विद्यालय से सीधे जयरामबाटी पहुँचा तो माँ मेरा हाथ पकड़कर यह दिखाने मुझे ले गयी थीं कि पेड़ में कितने सुन्दर फूल खिले हैं। मेरे देखने के बाद ही माँ ने फूल तोड़ने के लिए टोकरी दी थी। टोकरी अच्छी तरह धोकर मेरे द्वारा फूल तोड़ देने पर ही उन्होंने उन फूलों से श्री ठाकुर की पूजा की थी। ऐसी थीं माँ जननी!

(क्रमशः)

विवेक शिखा की 'संरक्षक'-योजना

विवेक शिखा के प्रकाशन की सुविधा को ध्यान में रखकर 'विवेक शिखा' के 'स्थायी कोष' की एक योजना बनायी गयी है। जो कोई कम से कम १०००/- (एक हजार) रुपये या इससे अधिक रुपये विवेक शिखा के 'स्थायी कोष' के लिए दान देंगे वे इसके संरक्षक होंगे। 'विवेक शिखा' में उनका नाम प्रकाशित होगा और वे यावज्जीवन विवेक शिखा निःशुल्क प्राप्त करते रहेंगे। विवेक शिखा के जो आजीवन सदस्य हैं वे शेष रकम देकर इस पत्रिका के संरक्षक हो सकते हैं। यह योजना केवल भारत के दाताओं के लिए लागू है।

—व्यवस्थापक

संरक्षक-सूची

संरक्षक का नाम	स्थान	रुपये
१. श्रीमती कमला घोष	इलाहाबाद	३,९९०/-
२. श्री नन्द लाल टांटिया	कलकत्ता	१,०००/-
३. श्री हरवंश लाल पाहुजा	जम्मूतवी	१,०००/-
४. श्रीमती निभा कौल	कलकत्ता	१,०००/-

स्वामी ब्रह्मानन्द के संस्मरण

स्वामी अखिलानन्द

(भगवान श्रीरामकृष्ण के एक प्रधान शिष्य तथा रामकृष्ण मठ/मिशन के प्रथम अध्यक्ष स्वामी ब्रह्मानन्द आध्यात्मिक भावों के एक अपूर्व ज्योति-पुंज थे। उनके बारे में लिखे गये निम्नलिखित संस्मरण हालीवुड से प्रकाशित होने वाले 'Vedanta and the West' पत्रिका के सितम्बर-अक्टूबर १९५४ अंक में प्रकाशित हुए थे और वहीं से अनूदित हुए हैं।—सं०)

१९११ ई० के फरवरी माह की बात है। एक दिन मैं स्वामी प्रेमानन्दजी के दर्शन की इच्छा से स्वामी आत्मबोधानन्द के साथ बलराम बोस के घर गया। उन दिनों वे वहीं निवास कर रहे थे। वहाँ पहुँचते ही हमने देखा कि स्वामी प्रेमानन्दजी श्रीरामकृष्ण के जन्मोत्सव की व्यवस्था के सिलसिले में कहीं बाहर जा रहे हैं। हमारे प्रणाम करने पर उन्होंने अत्यन्त स्नेहपूर्वक देखा और हमारे साथ वार्तालाप करने को पुनः घर के भीतर लौट आये। उन्होंने कहा—"मठ में आना, वहाँ महाराज[1] हैं।"

दो या तीन दिनों बाद श्रीरामकृष्ण के जन्म-दिवस पर मैं अपने एक अन्य युवा मित्र के साथ दक्षिणेश्वर गया और वहाँ मन्दिर तथा ठाकुर के कमरे में कई घण्टे बिताए। फिर कुछ दूसरे भक्तों के साथ नाव में बैठकर हम लोग बेलुड़ मठ पहुँचे। नाव से उतरते ही हमारी स्वामी तुरीयानन्दजी के साथ भेंट हुई। उन्होंने कहा—"महाराज हैं, जाकर उनसे मिलो।"

मठ के प्रमुख भवन के निकट पहुँचने पर हमें पता चला कि महाराज मन्दिर में हैं, अतः हम लोग वहीं चले गये। वहाँ हमने जो कुछ देखा, वह वस्तुतः हमारे जीवन का एक अविस्मरणीय दृश्य था। ठाकुरजी की पूजा समाप्ति पर थी और महाराज विग्रह को चँवर डुलाकर हवा कर रहे थे। उनकी आँखें एक अलौकिक आनन्द से दमक रही थीं। हम लोग मन्त्रमुग्ध से देखते रहे। थोड़ी देर बाद वे नीचे आहाते में उतर आये, हमने भी जाकर उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने सभी उपस्थित लोगों को आशीर्वाद दिया। तदुपरान्त उनके साथ भोजन करने को बैठे। स्वामी प्रेमानन्द, स्वामी तुरीयानन्द तथा अन्य संन्यासीगण उनकी बगल में बैठे थे।

कुछ दिनों बाद श्रीरामकृष्ण के जन्मोत्सव से सम्बन्धित सार्वजनिक समारोह हुआ। उस दिन मैं बड़े तड़के ही उठकर महाराज के दर्शन करने को गया। उस दिन उनसे दूर रह पाना मेरे लिए असम्भव सा हो उठा था। मेरे प्रणाम करने पर उन्होंने कुछ स्नेहपूर्ण शब्द कहे। आज जब मैं अपने उस दिन के व्यवहार का स्मरण करता हूँ तो मन ही मन हँस पड़ता हूँ। उस दिन भक्तों की कोई भी नई टोली आने पर मैं उनके साथ पुनः पुनः महाराज को प्रणाम करने जाता और प्रत्येक बार वे मेरी ओर देखकर कृपापूर्वक मुस्करा देते। ऐसा घण्टों तक चला था। तब तक भजन गाने के लिए कुछ निपुण गायक-वादक आ पहुँचे। सभी

लोग महाराज को घेरकर बैठ गये। भजन के समय महाराज एक दिव्य भाव में थे।

एक विकट रोग के चलते मुझे एक वर्ष से भी अधिक काल तक बाहर रहना पड़ा था। विशेष चिकित्सा हेतु इलाहाबाद के लिए प्रस्थान करने के पूर्व मैं महाराज से मिलने बलराम बोस के मकान पर गया। उन्होंने थोड़ी देर तक मेरे साथ बातचीत की और कहा कि अपने इलाहाबाद निवासकाल में मैं स्वामी विज्ञानानन्दजी से मिलूं। तदुपरान्त उन्होंने एक वयस्क स्वामीजी से कहकर मेरे घर जाने की व्यवस्था करा दी।

इलाहाबाद जाकर मेरे स्वास्थ्य में थोड़ा सुधार हुआ और तदुपरान्त मैं प्रायः प्रतिदिन स्वामी विज्ञानानन्दजी के पास जाया करता था। फिर मेरे कलकत्ता लौटने के समय स्वामी विज्ञानानन्दजी ने कहा—"जाकर महाराज से कहना कि मेरे अन्दर आध्यात्मिक शक्ति जाग्रत कर दीजिए।" मैंने पूछा—"आप ही क्यों नहीं कर देते?" वे हँसने लगे और बोले—"नहीं तुम महाराज के पास जाओ। वे आध्यात्मिकता के Power House (महत् भण्डार) हैं। उनकी अनुभूतियों का कोई ओर-छोर नहीं।"

कलकत्ता लौटते ही मैं बलुड़ मठ गया। इस बार मेरी भेंट सबसे पहले स्वामी प्रेमानन्दजी से ही हुई। मैंने उनसे रात में वहाँ ठहरने की अनुमति माँगी। वे मुझे तुरन्त स्वामी ब्रह्मानन्दजी के पास ले गये, जो गंगा की ओर मुख किये अकेले बैठे थे। जब मैं महाराज को प्रणाम कर रहा था उसी समय प्रेमानन्दजी ने उन्हें बताया कि मैं रात में यहीं ठहरना चाहता हूँ। महाराज ने तुरन्त अनुमति दे दी। स्नेहमयी जननी के समान स्वामी प्रेमानन्दजी ने मेरी वहाँ रहने की सारी व्यवस्था कर दी। मुझे वरिष्ठ संन्यासियों के साथ उन्हीं लोगों के कमरे में ठहरने की अनुमति मिल गयी।

अगला दिन मेरे जीवन का एक अविस्मरणीय दिन था। प्रातः जब मैंने महाराज को स्वामी विज्ञानानन्दजी के साथ हुई अपने अन्तिम वार्तालाप की बात कही तो वे बोले—"तुमने स्वामी विज्ञानानन्द को ही अपने अन्दर वह शक्ति जगा देने को क्यों नहीं कहा?"

मैंने उत्तर दिया—"मैंने उनसे कहा था।"

तदुपरान्त मैंने स्वामी विज्ञानानन्दजी की उनके बारे में कही हुई उक्ति दुहरा दी। सुनकर महाराज बड़े गम्भीर हो उठे और थोड़ी देर मौन बैठे रहे। अन्त में उन्होंने कहा—"इस जागरण के लिए थोड़ी तैयारी की आवश्यकता पड़ती है। तुम्हें दीक्षा लेनी होगी।"

मैंने अविलम्ब कहा—"महाराज, मेरे लिए जो भी आवश्यकता है, कर दीजिए।" उन्होंने बड़ी कृपापूर्वक मुझे कुछ यथोचित निर्देश दिये और आगे के लिए निर्देश प्राप्त करने को कुछ महीनों बाद पुनः आने को कहा।

वह काल व्यतीत हुआ तब महाराज वाराणसी में थे, अतः उनके दर्शन करने को मैं वहीं गया। प्रातःकाल चार बजे के थोड़े ही बाद मैं आश्रम में पहुँचा। बड़े विस्मय की बात है कि ज्योंही महाराज के कमरे के समीप पहुँचा त्योंही उन्होंने तथा उनके सचिव स्वामी शंकरानन्द ने प्रायः एक साथ ही अपने द्वार खोले। महाराज बड़े कृपालु रहे। इस बार उन्होंने मुझे आगे के लिए निर्देश दिये तथा आश्वासन एवं उत्साह भी प्रदान किये।

वाराणसी के आध्यात्मिक वातावरण के बारे में एक दिन महाराज ने कहा कि श्रीरामकृष्ण ने अपने शिष्यों को बताया था कि वहाँ देहत्याग करने वालों की मुक्ति हो जाती है। एक अन्य

अवसर पर उन्होंने कहा था कि वाराणसी के अद्भुत आध्यात्मिक परिवेश के कारण यदि कोई वहाँ थोड़ी सी भी साधना करे तो उसे आसानी से उच्च आध्यात्मिक अनुभूतियाँ हो सकती हैं। एक दूसरे समय उन्होंने बताया था कि भिन्न-भिन्न तीर्थ स्थानों में दिन के भिन्न-भिन्न कालों में आध्यात्मिक प्रवाह की अनुभूति होती है। यदि कोई इसे समझकर उक्त प्रवाह के समय साधना कर सके तो उसका मन सहज ही एकाग्र हो जाता है।

कुछ महीनों बाद मैं पुनः वाराणसी में ही महाराज से मिलने गया। दुर्गापूजा के दिन थे। इस बार भी उन्होंने बड़ा स्नेह व्यक्त किया और खूब उत्साहित किया।

इसके कुछ महीनों बाद जब मैं अपने कालेज की प्रवेशिका परीक्षा के पूर्व कलकत्ता लौटा, तो उन दिनों मैं मठ जाया करता था। अन्य समय जाने पर भय था कि कुछ विशिष्ट लोग मेरे इस आवागमन की बात जान लेने पर मेरे लिए समस्या खड़ी कर सकते हैं। एक दिन महाराज ने कुछ व्यक्तिगत निर्देश लेने के लिए अगले दिन आने को कहा। एक मिनट तक मैं पशोपेश में पड़ा रहा। पर उन्होंने मुस्कराते हुए कहा—"आना, सब ठीक हो जाएगा।" मैं समझ गया कि उन्हें मेरे छिपकर आने की बात ज्ञात है, अतः मैं भी मुस्करा उठा। स्पष्ट था कि उन्हें सब कुछ ज्ञात है और विस्मय की बात तो यह है कि उस दिन से वह सारी समस्या भी समाप्त हो गयी। अज्ञात रूप से महाराज ने मेरे पथ के सारे अवरोध दूर कर दिये थे।

अपनी दीक्षा होने के पूर्व मैं प्रायः ही महाराज के दर्शन को जाया करता था। एक दिन वे मठ के बरामदे में मौन बैठे थे कि स्वामी प्रेमानन्दजी ने आकर उनसे कहा—"आप क्यों इस लड़के को बार-बार यहाँ आने को मजबूर करते हैं।" महाराज ने पहले मेरी ओर देखा फिर उनकी ओर, और मुस्कराते हुए कहने लगे—"तुम कहते क्या हो! मैं उसे मठ में आने को मजबूर करता हूँ! उसकी जैसी इच्छा हो आये जाये ..। यह उसी की जगह है।" इस पर दोनों ही एक बड़ी मनमोहक हँसी हँसने लगे। मैं भी बड़ा हर्षित हुआ। एक दूसरे दिन महाराज ने मुझे कहा था कि कॉलेज की पढ़ाई समाप्त हो जाने पर मैं संघ में सम्मिलित हो सकता हूँ।

आखिरकार महाराज ने मेरी दीक्षा के लिए एक दिन नियत कर दिया। वह श्रीरामकृष्ण का जन्मदिवस था। उस दिन प्रातःकाल ही मैं पुष्प तथा अन्य सामग्री लेकर कॉलेज के छात्रावास से चलकर बेलुड़ मठ पहुँचा और सभी चीजों महाराज के कमरे में रख दी। उन्होंने मुझे गंगा में स्नान करके मन्दिर में आने का आदेश दिया। मैं स्नान करने को चला पर शीघ्र ही उन्होंने एक युवा स्वामीजी को मुझे बुला लाने भेजा, क्योंकि वे मन्दिर में जा चुके थे। मैं दौड़ता हुआ आ पहुँचा। मेरी दृष्टि जब महाराज पर पड़ी तो मुझे उनका वही भव्य व्यक्तित्व दीख पड़ा जो प्रथम भेंट के समय दिखा था। वे मुख्य मन्दिर के बरामदे में टहलते हुए मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। मुझे देखते ही उन्होंने कहा—"आओ, बेटा!" मैं आनन्दविभोर उनके पीछे हो लिया। हमारे अन्दर प्रवेश करते ही मन्दिर का द्वार बन्द कर दिया गया और वहाँ मात्र हम दोनों ही रह गये। दीक्षा के बाद दक्षिणा देनी पड़ती है, पर मैं एक अबोध बालक था और यह बात जानता न था। मन्दिर के बाहर आने के बाद महाराज ने अपने चरणों में अर्पित करने के लिए मेरे हाथ में एक छोटा सा पुष्प दे दिया।

मन्दिर में विशेष पूजा हो जाने के बाद महाराज, स्वामी प्रेमानन्द तथा अन्य वरिष्ठ संन्यासियों के साथ बैठकर हम लोगों ने प्रसाद ग्रहण किया। कई सौ लोग आये हुए थे। अपराह्न में महाराज ने मुझे छात्रावास लौट जाने को कहा, ताकि मैं अधिक थक न जाऊँ।

१९१६ से १९१९ ई० तक महाराज ने अधिकांशतः बेलुड़ मठ तथा कलकत्ते में ही निवास किया था। मेरी ही आयुवर्ग के बहुत से युवक उनके इर्द-गिर्द एकत्र हो गये थे, जो प्रायः ही उनसे मिलने को आया करते थे। धीरे-धीरे हम लोगों की एक टोली गढ़ उठी और हम आपस में घनिष्ट मित्र बन गये। जब कभी महाराज कलकत्ते में होते तो मैं दोपहर को अथवा तीसरे पहर उनसे मिलने जाया करता था और इसी प्रकार काल व्यतीत होता रहा।

एक शुभ दिन जब मैं मठ में पहुँचा तो महाराज को अन्य संन्यासी एवं भक्तों के साथ भोजन करते देख मैं उनकी सेवा में लग गया। मैं उनके लिए पंखा डुलाता रहा और स्वयं भोजन के लिए नहीं बैठा। उस समय दूसरों के समक्ष तो उन्होंने कुछ भी नहीं कहा, परन्तु बाद में मातृसुलभ स्नेह के साथ उन्होंने पूछा—"तुमने भोजन क्यों नहीं किया? तुम्हारे साथ यही तो मुश्किल है!" मैं उनकी उस समय की स्नेहमय एवं खेदयुक्त मुखमुद्रा कभी न भूल सकूँगा। उन्हें मेरे स्वास्थ्य की बड़ी चिन्ता थी।...मेरे छात्रावास के दिनों में महाराज मुझे प्रायः ही बाजार से अच्छा घी-मक्खन खरीदकर सेवन करने को कहते। वे निरन्तर मेरी मंगल कामना करते। उनका स्नेह मैं कितनी तीव्रतापूर्वक अनुभव करता था। इसका आसानी से अनुमान किया जा सकता है।

युवा संन्यासी तथा भक्तगण संध्या को ध्यान करने के पश्चात् महाराज के पास समवेत हुआ करते थे। कभी वहाँ भजन होते, तो कभी गहन नीरवता छायी रहती। उस समय हम सभी वहाँ बैठकर ध्यान करते। हमारे जीवन का वह एक अविस्मरणीय काल था। तब बिना किसी के कोई प्रश्न किये महाराज शायद ही कुछ बोलते। यदि हमें अपनी साधना के बारे में किन्हीं निर्देशों की आवश्यकता होती, तो हम बड़े सवेरे अथवा दोपहर को उनसे मिलने जाते। हम सब उनके प्रति एक अद्भुत आकर्षण का अनुभव करते मानो हमारा सारा अस्तित्व ही किसी उच्च तथा महिमामय वस्तु की ओर खिंचा जा रहा हो।

जब कभी मैं एक-दो दिन बाद महाराज के पास जाता, तो वे कहते—"क्या बात है, आजकल तुम दिखाई नहीं पड़ते!" यदि मैं उत्तर देता—"क्यों महाराज, मैं परसों ही तो आया था।" तो वे कहते—"ओह, तुम और तुम्हारा परसों!"

एक दिन महाराज एक भक्त के घर[२] जा रहे थे। मैं महाराज के दो अन्य शिष्यों[३] के साथ वहाँ उनसे मिलने को गया। हमलोग महाराज के सान्निध्य में बैठे हुए थे कि एक युवा संन्यासी आकर एक भक्त के बारे में पूछने लगे, जो हमारे कालेज के छात्रावास में कुछ गड़बड़ी उत्पन्न कर रहे थे। विश्वविद्यालय से सहायता लेकर वह छात्रावास प्रारम्भ करने में मेरा प्रमुख हाथ था।

महाराज ने पूछा—"क्या बात है? वहाँ क्या घटना हुई?"

मैंने संक्षेप में सारी वस्तुस्थिति कह सुनायी।

उन्होंने कहा—"उस व्यक्ति के साथ मिलकर छात्रावास की स्थापना करते समय तुमने यह बात मुझे क्यों नहीं बतायी?"

मैंने उत्तर दिया—"महाराज मैंने सोचा कि वे एक भक्त हैं, अतः कोई समस्या न होगी।"

इस पर महाराज कह उठे—"अरे, मैंने ऐसे कितने ही भक्त देखे हैं।"

तत्पश्चात् महाराज लगभग एक घण्टे तक हमारे समक्ष मानवीय सम्बन्धों एवं क्रियाकलापों पर बोलते रहे। उन्होंने कहा—"बेटा। तुम किसी को चाहे कितनी भी मदद करो, परन्तु तुम्हारी एक भी चीज उसे नापसन्द हो, तो वह उसी को स्मरण रखेगा और तुम्हारी सारी भलाई की बातें भूल जाएगा। वह सर्वत्र तुम्हारी निन्दा करता फिरेगा। यह संसार ही ऐसा है। विद्यासागर महाशय बिना किसी भेदभाव अथवा सोच-विचार के सबकी सहायता करते थे। पर अन्त में जिन लोगों ने उनकी सेवा तथा कृपा प्राप्त की, वे ही उनके निन्दक हो गये। इस पर भी वे उन्हीं लोगों की पुनः पुनः सहायता करते रहते थे। उनके जीवन के अन्तिम काल में यदि कोई आकर उन्हें सूचित करता कि अमुक सज्जन आपकी आलोचना कर रहे थे, तो वे क्षण भर सोचकर कहते—"क्यों? क्या मैंने कभी उनकी कोई भलाई की है, जो मेरा अनिष्ट चाहते हैं!" इस उदाहरण से तुम सामान्य लोगों का स्वभाव समझ सकते हो। परन्तु साधु-पुरुष अपना स्वभाव नहीं छोड़ते।" तदुपरान्त उन्होंने एक कहानी बतायी।

एक महात्मा एक नदी के तट पर बैठकर ध्यान कर रहे थे। सहसा उन्होंने देखा कि एक बिच्छू नदी से प्रवाह में पड़ा बहा जा रहा है और जल से अपनी प्राणरक्षा के हेतु संघर्ष भी किए जा रहा है। महात्मा उसे उठाकर किनारे पर लाने लगे कि बिच्छू ने उन्हें डंक मार दिया। थोड़ी देर बाद वह बिच्छू पुनः नदी में गिर पड़ा। महात्मा ने उसे पुनः पानी से उबारा और बिच्छू ने पुनः उन्हें डंक मारा। वे पीड़ा से छटपटाने लगे। कुछ काल बाद उन्होंने देखा कि बिच्छू पुनः पानी में डूब रहा है। वे दुविधा में पड़ गये कि क्या करें। फिर उन्होंने मन ही मन सोचा—"बिच्छू का स्वभाव है डंक मारना और साधु का स्वभाव है पीड़ित प्राणियों की सेवा करना।" अतः उन्होंने बिच्छू को फिर उठा लिया, उसने उन्हें फिर डंक मारा, परन्तु इस बार वे उसे नदी से काफी दूरी पर छोड़ आये ताकि वह पुनः पानी में न पड़ जाए।

इस कहानी के माध्यम से महाराज ने सदा-सर्वदा के लिए मेरे मन में यह बात अंकित कर दी कि साधु का सच्चा भाव तथा स्वभाव क्या होना चाहिए। वे मुझे भविष्य के लिए शिक्षा दे रहे थे कि अन्तर्मानवीय परिस्थितियों में मुझे कैसा व्यवहार करना चाहिए।

अभी मेरी स्नातक की पढ़ाई चल ही रही थी कि महाराज ने ठीक कर दिया कि मठ में सम्मिलित होने के पश्चात् मुझे मद्रास जाना होगा। इन्होंने कहा—"इस निर्णय की बात अभी किसी पर प्रकट न करना।" फिर बोले—"मैं तुम्हें वहाँ इसलिए भेज रहा हूँ कि वहाँ तुम्हारी ही उमर के अवनी'[४] आदि कई लड़के हैं। तुम लोगों के बीच अच्छी मित्रता हो जाएगी।"

संघ में सम्मिलित होने के पश्चात् जब मैं महाराज के पास निवास करने भुवनेश्वर गया तो वहाँ वे मेरे प्रति बड़े ही कृपालु एवं उदार रहे। सुबह शाम वे मुझे अपने साथ टहलने को ले जाते। बहुधा हमारे बीच कोई बात नहीं होती, मैं उनका मौन अनुसरण करता। एक दिन उन्होंने मुझे वाराणसी के सेवाश्रम का इतिहास बताया कि किस प्रकार वह संस्था चन्द पैसों से प्रारंभ होकर अब विशाल आकार धारण कर चुकी है तथा रोगियों, पीड़ितों एवं वृद्धों की सेवा में निरत है।

भुवनेश्वर निवास काल में कभी-कभी मैं महाराज के लिए भोजन पकाता था। वे विनोद-

पूर्वक कहते—"यहीं रहकर खाना पकाते रहना।" परन्तु यह बात सदा उनके मन में बनी रहती थी कि मुझे मद्रास भेजना है। एक दिन जब मैं बरामदे में महाराज के सामने खड़ा था तो वे एक वयस्क भक्त से कहने लगे—"मैं इस लड़के को मद्रास इसलिए भेज रहा हूँ ताकि वह अंग्रेजी बोलना सीख जाए।" सच पूछो तो मैंने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि मुझे अमेरिका में कार्य करना होगा। उसी समय कलकत्ता से एक स्वामीजी का पत्र आया कि संघ के महासचिव स्वामी सारदानन्दजी की इच्छा है कि तुम कलकत्ते में आकर एक विद्यालय प्रारम्भ करो। एक धनाढ्य सज्जन ने इस योजना के लिए आर्थिक सहायता देने का प्रस्ताव रखा था और संघ में प्रवेश लेने के पूर्व अपने विद्यार्थी जीवन में मैं इस प्रस्ताव से जुड़ा था। वह पत्र आते ही महाराज ने उसी रात मुझे मद्रास भेजने का निश्चय किया। उनके साथ रहकर उनकी सेवा करने की मेरी इच्छा जानकर महाराज ने कहा—"क्या तुम सोचते हो कि जो लड़के मुझसे दूर रहकर ठाकुर का कार्य कर रहे हैं, वे मेरी सेवा नहीं कर रहे हैं?" उनके इन शब्दों पर मैं मौन रह गया।

बलराम बोस के पुत्र तथा महान भक्त रामबाबू ने महाराज के पास जाकर मुझे कुछ दिन और रख लेने का आग्रह किया ताकि मैं महाराज एवं उनकी टोली के साथ पुरी भी जा सकूँ। महाराज ने कहा—"नहीं राम, मैं उसे अविलम्ब मद्रास भेजना चाहता हूँ।" प्रस्थान करने के पूर्व मैंने महाराज से पूछा कि क्या निकट भविष्य में उनके मद्रास आने की सम्भावना है? उन्होंने हामी भरी। मैंने यह भी पूछा कि अवतारों तथा महापुरुषों के बारे में आने वाले स्वप्न क्या सत्य होते हैं? उन्होंने कहा—"हाँ, ऐसी अनुभूतियाँ वास्तव में सत्य है।" तत्पश्चात् मैं मद्रास के लिए रवाना हुआ।

महाराज का मद्रास में आगमन हुआ। वहाँ एक दिन उन्होंने मुझे अपने साथ टहलने चलने को कहा। रास्ते में हम लोग एक वृक्ष के नीचे ठहर गये और उन्होंने लगभग दो घण्टे तक मेरे साथ वार्तालाप किया। उन्होंने बताया कि यदि लोग अविवेकी हो और हमें हानि पहुँचाने का प्रयास करें तो हमें उनके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए।

हमारे एक केन्द्र के कुछ लड़कों ने कुछ गड़बड़ी की थी और इस पर कुछ वरिष्ठ संन्यासियों ने महाराज से सिफारिश की थी कि उन्हें मठ से निष्कासित कर दिया जाए। उन्हें यह सूचित किया गया था कि ये लड़के अपने स्वभाव तथा संस्कारों के कारण मठ में रहने के उपयुक्त नहीं हैं। परन्तु महाराज ने कहा—"देखो, साधु-महात्माओं के साथ तो कोई भी रह सकता है, परन्तु मानवीय दुर्बलताओं के प्रति सहानुभूति जताने तथा सामान्य लोगों की सहायता करने के लिए एक विशेष गुण की आवश्यकता होती है।" मुझे ज्ञात है कि महाराज ने उन लड़कों के प्रति कितने स्नेह तथा क्षमा का भाव व्यक्त किया था और इस प्रकार उन लोगों का जीवन रूपान्तरित हो गया था। उन्होंने कहा—"यदि मैं एक कम्बल से चुन-चुनकर रोएँ निकालने लगूँ तो बचेगा ही क्या?"

अपने अतीत जीवन का सिंहावलोकन करने पर मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि महाराज को मेरा सारा भविष्य ज्ञात था और उसी के अनुसार उन्होंने मुझे व्यक्तियों एवं समस्याओं के बीच कैसे व्यवहार करना इस विषय में निर्देश दिए थे। इस प्रसंग में उन्होंने कहा था—"देखो, श्रीरामकृष्ण कहा करते थे, 'सहो, सहो, सहो। जो सहता है

सो रहता है, जो नहीं सहता वह बरबाद हो जाता है।" फिर उन्होंने यह भी कहा—"सत्य बोलना, पर सदा प्रिय सत्य ही बोलना, कटु सत्य कदापि न बोलना।" इन दो महत्वपूर्ण निर्देशों ने अनेक नाजुक अवसरों पर मेरी सहायता की और भारत एवं अमेरिका के मेरे विनम्र जीवन की कई समस्याओं का निराकरण किया है।

एक दिन मैं महाराज के कमरे में जाकर उनके अत्यन्त समीप बैठ गया। वे मेरे उन दिनों के बारे में कहने लगे जब मैं अपनी बीमारी के दिनों में कलकत्ते में पहली बार उनसे मिलने को आया था। मुझे यह जानकर बड़ा ही विस्मय हुआ कि मैं उस दिन उनके लिए जो छोटा-मोटा उपहार लाया था, उसकी भी उन्हें स्पष्ट स्मृति थी।

१९२१ ई. में, मद्रास में मेरी संन्यास की दीक्षा हुई जो मेरे जीवन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटनाओं में से एक है। एक दिन मैं उनके कमरे में जाकर चुपचाप बैठा था।

उन्होंने पूछा—"क्यों जी, तुम्हारा संन्यास अभी तक नहीं हुआ?"

मैंने मुस्कराते हुए कहा—"नहीं, महाराज!"

इस पर वे बोले—"ठीक है, सारी व्यवस्था कर लो। स्वामी शिवानन्द और स्वामी शर्वानन्द से भी कह दो।"

मेरी प्रसन्नता का ठिकाना न था। सारी प्रारम्भिक तैयारियाँ तथा अनुष्ठान दिन में ही सम्पन्न हो गए और अगले दिन बड़े सबेरे ही स्वामी प्रभवानन्द और मैं संन्यास व्रत में दीक्षित हो गये।

फिर जिस दिन महाराज ने मद्रास रामकृष्ण मिशन के विद्यार्थी भवन का उद्घाटन किया, उस दिन एक और भी स्मरणीय घटना हो गयी। बड़े स्नेह तथा अनुग्रहपूर्वक महाराज ने मुझे पूजा के लिए आवश्यक तैयारी करने को भेजा, फिर वे मठ के अन्य संन्यासी एवं भक्तों के साथ शोभायात्रा में नवनिर्मित शिक्षा संस्थान तक ले जाये गये। वहाँ लगभग चार-पाँच सौ लोग उपस्थित थे। शोभायात्रा जब भवन की ओर जा रही थी तो उसके कुछ सौ गज पूर्व ही मैं महाराज की ओर बढ़ा। उनके समीप पहुँचते ही मुझे एक अवर्णनीय अनुभूति हुई। विस्मय की बात तो यह है कि वहाँ उपस्थित सभी लोगों को एक असाधारण सी अनुभूति हुई, मानो उन्हें चेतना के एक उच्चतर स्तर में उन्नीत कर दिया गया हो। अगले दिन प्रातः काल स्वामी शिवानन्दजी महाराज को प्रणाम करते समय जब मैंने उनके समक्ष यह प्रसंग उठाया तो उन्होंने कहा "हाँ, महाराज में एक साथ ही अनेक लोगों को उच्च भाव में उन्नीत कर देने की क्षमता है।"

महाराज की उपस्थिति काल में ही मद्रास मठ में दुर्गापूजा का अनुष्ठान होने पर भी कुछ ऐसी ही घटना हुई थी, वे कुछ दिन मेरे स्मृति पटल पर सदा-सर्वदा के लिए अंकित हो गये हैं। पूजा के अंतिम दिन सभी उपस्थित लोगों को एक अनिर्वचनीय आनन्द तथा उदात्त अवस्था का बोध हुआ था।

मेरे मद्रास के दिनों में वहाँ एक अंग्रेज महिला आई थी, जो एक मानसिक विक्षोभ के दौर से गुजर रही थी। मेरी सलाह पर वे कलकत्ता जाकर महाराज से मिलीं। बाद में श्रीलंका लौटते समय जब वे मद्रास में ठहरीं तो उनसे उनके वहाँ के अनुभव सुनने को मिले। अपनी अशान्त मनःस्थिति में जाकर महाराज को प्रणाम करने पर उन्होंने जब उनको आशीर्वाद दिया, उसी

समय इन्हें एक उच्च आध्यात्मिक अनुभूति हुई, जिसके फलस्वरूप इनका सारा कष्ट जाता रहा और मन एक सहज आनन्द एवं शान्ति से परिपूर्ण हो उठा था। उनके जीवन में एक आमूलचूल परिवर्तन आ गया था।

(विवेक ज्योति, वर्ष ३० अंक ३ से साभार)

---

१. स्वामी ब्रह्मानन्द
२. स्वामी अम्बिकानन्द के पूर्वाश्रम का घर जो रामकृष्णपुर हावड़ा में स्थित है।
३. परवर्ती काल में वे स्वामी विविदिषानन्द तथा स्वामी तेजसानन्द के नाम से परिचित हुए।
४. स्वामी प्रभवानन्द

२९ मार्च, महावीर जयन्ती

महावीर को पूजें या समझें ?

—आचार्य महाप्रज्ञ

जिस युग में महावीर ने जन्म लिया था उस युग में हिंसा को सुलझाने का विकल्प नहीं था। आज सबसे बुरी बात यह हो गयी है कि आज के हमारे युग ने, आज के विश्व ने और हिन्दुस्तान की घटनाओं ने यह प्रमाणित कर दिया कि वर्तमान समस्याओं को सुलझाने का यदि कोई एकमात्र विकल्प है तो वह हिंसा है। इतनी भयंकर दार्शनिक विकृति और वैचारिक विकृति मुझे किसी युग की चिंतनधारा में देखने को नहीं मिलती, जो आज मिल रही है।

आज हमारा विश्वास अहिंसा से उठ गया है। अहिंसा हमारी समस्याओं को सुलझाने का कोई विकल्प है, अहिंसा के द्वारा कोई समस्या सुलझाई जा सकती है, यह धारणा आज नहीं रही है। पुरानी पीढ़ी में हो सकता है, कुछ बची भी हो किन्तु आज की नयी पीढ़ी में यह संस्कार समाप्त हो गया है कि अहिंसा भी हमारे लिए उपादेय है या उसके द्वारा हमारे जीवन की कोई समस्या सुलझाई जा सकती है। आज हमने एकमात्र विकल्प चुन लिया है हिंसा, हिंसा की भाषा। सरकार से कोई बात मनवानी है तो हिंसा करनी होगी और सरकार भी कोई बात मानेगी तो तब मानेगी जब सामने हिंसा आ जाती है। यह गोली की भाषा जो चल रही है और इस गोली की भाषा में जिसका विश्वास हो गया, मैं समझता हूँ कि यह भूल हो गई प्रकृति की। महावीर को ढाई हजार वर्ष पूर्व नहीं, उन्हें आज जन्मना चाहिए था। कितना अच्छा होता यदि महावीर जैसा तेजस्वी और पराक्रमी व्यक्तित्व आज इस धरती पर जन्म लेता और हमारे बीच होता। हमारी कितनी गलत धारणाओं और गलत उपमाओं को बदलने के लिए कोई उपक्रम प्रस्तुत करता। महावीर चक्षुदाता थे।

पुराने जमाने की बात है। एक वैद्य के पास एक अंधा व्यक्ति गया। जाकर बोला—'वैद्यप्रवर! इस शहर में कितने लोग कपड़े रखने वाले हैं और कितने व्यक्ति बिना कपड़े वाले, मुझे गिनकर आप बता दीजिए।' वैद्य ने कहा—'मैं कहाँ निकम्मा बैठा हूँ, जो तुम्हारी गिनती करता फिरूँ। मैं किस-किस के पास जाऊं? मैं एक काम कर देता हूँ कि तुम्हारी आँखों को ठीक कर देता हूं।' उसने एक अंजन लगाया। जिससे

आँखें खुल गयी। वैद्य ने कहा—'अब जाओ और देख लो कि कौन वस्त्र रखने वाला है और कौन बिना वस्त्र का।'

जो आदमी आँख देता है, वह दर्शन देता है, वह सब कुछ देखने की ताकत देता है। भगवान महावीर ने एक ऐसा अंजन आंजा कि हमें देखने के लिए दृष्टि दी। मैं देखता हूँ कि ढाई हजार वर्षों की अवधि में, समूचे साहित्य में, समूचे भारतीय चिंतन में महावीर अपने प्रकार का अकेला व्यक्तित्व है। मैं जैन मुनि हूँ, महावीर का अनुयायी हूँ इसलिए यह बात नहीं कर रहा हूँ। मेरे आचार्य ने मेरी भी आँख में कोई ऐसा अंजन आंज दिया कि मुझे ऐसा नहीं लगता कि जैन हो, वह तो अच्छा ही होता है और बौद्ध होता है या और कुछ होता है, वह खराब होता है। मैं तो विचारों को देखता हूँ। जिसका विचार मुझे गहराई में लगता है, चाहे माओ का हो, चाहे कन्फ्युशियस का हो, उसके सामने मेरा सिर श्रद्धा से झुक जाता है। महावीर के प्रति इसलिए मेरा सिर नहीं झुका कि मैंने उनकी परंपरा को स्वीकार किया है। परंपरा को स्वीकार करना एक बात है किन्तु विचारों के पीछे लग जाना यह दूसरी बात है। मैंने देखा, महावीर ने जो कुछ भी किया, यदि सचमुच हम भारतीय चिंतन का विश्लेषण करें तो कुछ ऐसी मौलिकता पायेंगे कि जो विरल, अपने आप में अद्वितीय और अनुपम होगी।

कुछ दिन पहले मैं एक ग्रंथ लिखने के प्रसंग में कुछ बातें देख रहा था। बातें गहरी नहीं थीं और ऐसी भी नहीं थीं कि वे बातें मैंने पहली बार देखी हों। न जाने कितनी बार ग्रंथ का पारायण किया था। ग्रंथ भी कोई दार्शनिक गहराई का नहीं था। साधारण था—श्रावक प्रतिक्रमण। मैं देख रहा था। देखते-देखते ध्यान गया और कुछ बातें ध्यान में आयीं। मैंने उसी समय गुरुदेव के सामने रखीं। महावीर ने कहा—'अच्छा हो, हम अपना संयम अपने आप करें।'

अब आप देखिए। कुछ ही वर्ष पूर्व स्वर्ण का नियंत्रण हुआ था। आज भूमि का नियंत्रण हो रहा है। शहरी संपत्ति का नियंत्रण हो रहा है। अनाज का संग्रह करने वालों पर नियंत्रण हो रहा है और पूँजी पर भी नियंत्रण हो रहा है। सारे नियंत्रण सरकार लगा रही है। आज आपको भगवान महावीर की वाणी याद होती तो शायद सरकार को यह नियंत्रण लगाने की आवश्यकता न पड़ती। आप श्रावक प्रतिक्रमण के पाँच व्रतों और अतिचार को देखिए। आज सरकार क्या कह रही है और पचीस सौ वर्ष पूर्व भगवान महावीर क्या कर रहे हैं? वे कह रहे हैं कि धन की सीमा करो—इतने से अधिक धन का संग्रह नहीं करूँगा, इतने से ज्यादा अनाज का संग्रह नहीं करूँगा।

नियंत्रण था पर उसको भुला दिया। इसीलिए सरकार को बाध्य होकर नियंत्रण लाना पड़ रहा है। पशुओं का संग्रह नहीं करूँगा: प्रमाण से ज्यादा घरेलू उपकरणों का संग्रह नहीं करूँगा। यह थे भगवान महावीर के अपरिग्रह या इच्छा-परिणाम व्रत के पाँच उपदेश। आज हम धर्म को शक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं। धर्म आध्यात्मिक है, धर्म व्यक्तिगत है किन्तु भगवान महावीर ने ऐसा नहीं किया। उन्होंने जहाँ धर्म के व्यक्तिगत रूप का प्रतिपादन किया, धर्म की आध्यात्मिक रूप में प्रतिपादित किया तो दूसरी ओर धर्म के संदर्भ में सामाजिक बुराइयों और सामाजिक समस्याओं के प्रतिकार का सूत्र दिया। कितना अच्छा होता कि हम महावीर को भलीभांति समझें।

आचार्य हेमचन्द्र ने लिखा-वीतराग! आपकी पूजा करने की अपेक्षा आपकी आज्ञा पालन बहुत

श्रेष्ठ है। दो बातें हैं एक पूजा करना और एक आज्ञा पालन करना। हम ऐसी संतान हो गये कि पूजा तो खूब करते हैं किन्तु आज्ञा-पालन नहीं चाहते। हम पिता के चरणों में वंदन करना जानते हैं पर यदि पिता आज्ञा दे कि इधर जाओ तो हम उधर जायेंगे। अरे! बाप कैसे प्रसन्न होगा। आप उनकी हजार बार पूजा करें और उनकी एक बात को भी टाल दें तो वे प्रसन्न कैसे होंगे? यह स्थिति आज जैन समाज की नहीं, सारे धार्मिक समाज की हो रही है। हिन्दुस्तान के वैचारिक पतन और मानसिक गुलामी का यदि कोई बड़ा कारण है तो वह है कोरा पूजावाद, आचार-शून्य पूजावाद। इस भक्तिवाद ने, इस कोरे कर्मकांड और कोरी उपासना ने, हिन्दुस्तान के चरित्र का पतन किया, उतना किसी ने नहीं किया, उतना शायद नास्तिकों ने भी नहीं किया। इस सारी स्थिति के संदर्भ में महावीर को समझने का प्रयत्न करें।

मुझे एक प्रसंग याद आ रहा है—राजनीतिक दलों में दल-बदल की बात चलती रही है। एक बड़े राजनीतिक कार्यकर्ता ने अपना दल बदल दिया। जिस पार्टी से वे निकले, उस पार्टी के हाईकमान ने प्रस्ताव किया कि उसने अनुशासन को भंग किया है, इसलिए उसे तिरस्कृत करना चाहिए, उसकी निन्दा करनी चाहिए, दंडित करना चाहिए। थोड़े दिन बाद दूसरी पार्टी का सदस्य उनकी पार्टी में आया तो सब मिले और मिलकर बोले—'इसका हृदय परिवर्तन हुआ है इसलिए उसका अभिनन्दन होना चाहिए।' जहाँ आने का प्रश्न है, वहाँ हृदय परिवर्तन के लिए अभिनन्दन होना चाहिए और जहाँ जाने का प्रश्न है वहाँ तिरस्कार होना चाहिए। आज हम यह सोचें कि भगवान महावीर ने जो सूत्र दिये थे, उन सूत्रों का हम पालन करें।

भगवान महावीर ने, जहाँ तक मैं समझ पाया हूँ और पढ़ने को मिला है, कहीं भी नहीं कहा कि मेरा कोरा नाम जपो, कोरी पूजा करो, यह करो, वह करो। भगवान के पास कोई भी आया। उससे उन्होंने यही कहा—व्रतों को स्वीकार करो। हिन्दुस्तान में एक महावीर ही ऐसे हुए हैं, जिन्होंने व्रतों पर इतना बल दिया है, संयम पर इतना बल दिया है और चरित्र पर इतना बल दिया है।

(आर्यावर्त, पटना से साभार)

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥

(भागवत ९/१९/१४)

—मनुष्य की कामना काम्यवस्तु के भोग से शान्त नहीं होती। जैसे घी डालने से अग्नि शान्त न होकर और अधिक प्रज्वलित हो उठती है, वैसे ही कामना-परायण मन को भोग अर्पित करने से वह कामना सौ-गुनी भड़क उठती है। भोग मन को शान्त नहीं कर सकता।

संत तुकाराम की भक्ति साधना

कैलाश प्रसाद सिंह "स्वच्छन्द"

मराठी संत तुकाराम की भक्ति-भावना अध्यात्म तथा भारतीय संस्कृति के लिए अमूल्य थाती है। तुकाराम ने ईश्वर के प्रति पूर्णतः समर्पणशीलता दिखलायी ही, साथ-साथ भक्तियुक्त कर्मशक्ति को अपनाने का भी संदेश दिया। निष्काम कर्म के पथ पर अध्यात्म चेतना की दीपिका को जलाये रहना तुकाराम के वश की बात थी। उनके भक्तियुक्त कर्मपथ पर अवरोध-संकट के झंझावत उठते रहे, निर्यात के आघात भी हुए, पर उनकी भक्तिमयी कर्म साधना खंडित नहीं हुई। उन्होंने अपनी काव्य-रचना अभंग नामक स्फुट छंद में की। इसलिए उनके काव्य को अभंग कहा जाता है। भक्ति के मर्म तथा कर्म के बीच संतुलन स्थापित कर साधक तथा अध्यात्म पुरुष तुकाराम ने मानव-तन को सार्थक बनाने का संदेश दिया। उदारचेता तुकाराम पीड़ित मानवता की सेवा के लिए संकल्पबद्ध थे। प्रारंभ में परिवार के दायित्व-वहन के लिए वे व्यापारी (पैतृक व्यवसाय) भी बने। एक बार वे नमक विक्रय करने कर्नाटक प्रदेश की ओर गये, पर कमायी गयी मुद्राएं एक विपन्न निर्धन ब्राह्मण को दे दीं। उनकी मुख्य प्रवृत्ति तो भक्ति तथा अध्यात्म चेतना थी। अतः सज्जनता एवं उदारता की प्रतिमूर्ति तुकाराम को सांसारिक सुखों से विरक्ति होने लगी। उन्होंने लिखा है—"यह बहुत अच्छा हुआ कि मेरी दुकान का दिवाला निकला और दुर्भिक्ष (सन् १६३० में महाराष्ट्र में घोर अकाल पड़ा) ने मुझे असहाय बना दिया। पश्चाताप की अग्नि में जलकर मुझे संसार से विरक्ति हो गयी।' (तुकाराम अभंग गाथा, १३३") उनकी पहली पत्नी तथा एक पुत्र की मौत ने भी उन्हें वैराग्य की ओर उन्मुख कर दिया। निम्न जाति में उत्पन्न होकर उन्होंने समस्त मानव जाति का सिर ऊँचा किया। उन पर उच्च जाति के घातक प्रहार भी हुए। उनके संतत्व में निहित क्षमाशीलता, सहिष्णुता एवं उदारता ने उन्हें जाति धर्म के भेदभाव की क्षुद्रता से ऊपर उठा दिया था। संत तुकाराम में कबीर की तरह निर्भीकता तथा दृढ़ता विद्यमान थी।

श्रीमती रमेश सेठ के शब्दों में—"कर्मकांड और मिथ्याचार का कड़े शब्दों में विरोध करने के कारण तुकाराम को पर्याप्त साहस का परिचय देना पड़ा होगा। इसमें तनिक संदेह नहीं।" भक्त तुकाराम के अनुसार जब तक जीव और ब्रह्म के मध्य अहंकार रूपी आवरण है, प्रभु मिलन संभव नहीं। वे इस अहंकार रूपी शत्रु के प्रति विशेष रूप से सचेत थे। उनके अनुसार कर्ता तो वही (ईश्वर) है, मैं तो निमित्त मात्र हूँ। शरणागत भक्त में अहंकार का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। सर्वस्व का त्याग करने पर ही प्रभु की प्राप्ति होती है। (तु.अ.गा.) भव बंधन से त्रस्त तुकाराम ने भक्ति साधना में प्रेमप्रवणता को प्रधानता दी। भगवान तो प्रेमाकुल भक्त के वश में हैं। भक्त तुकाराम ने इसे इन पंक्तियों में व्यक्त किया है—

'दासों पाछों दौरे राम। सोवे खड़ा आपे मुकाम।
प्रेमसरडो बांछो गले। खैंच चले उधर।'

समन्वयवादी तुकाराम की भक्ति सगुण-निर्गुण का भेद नहीं जानती। उनके अनुसार जो ब्रह्ममूल

रूप में अद्वैत एवं निराकार है वही भक्ति सुख हेतु सगुण रूप धारण करता है। उन्होंने सगुण प्रभु का प्रतिविम्ब सभी प्राणियों में देखा। अतः जाति, वर्ण, वर्ग, धर्म आदि की सीमा को लांघकर उनकी भक्ति साधना समस्त मानवता का कल्याण करती रही।

उनकी दास्य भक्ति में प्रभु के प्रति दास्य भावमूलक विनम्रता तथा समर्पणशीलता दीख पड़ती है। तुलसी की भांति ज्ञान की अपेक्षा भक्ति को अधिक महत्व देते हुए तुकाराम ने तत्कालीन सामाजिक विसंगतियों को दूर करने का संदेश दिया। भेदभाव तथा उस युग की पीड़ा ने भी उन्हें सर्व शक्तिमान प्रभु की शरण में जाने को प्रेरित किया। सख्य-भाव से प्रेरित होकर वे कहते हैं—'हे प्रभु, तू ही मेरा मित्र और सगा संबंधी है। तेरी और मेरी प्रीति सदा बनी रहे।' उनके अनुसार प्रभु के दास. सखा या प्रेमी हुए भक्त की साधना के समक्ष अणिमा, महिमा आदि अष्टसिद्धियां भी हेय हैं। विट्ठल के प्रेम में तूकाराम इतने विभोर हो गये कि उसका अंतर्बाह्य ही कृष्णमेय हो गया। उन्होंने प्रभु विट्ठल के प्रति वात्सल्य भाव भरी भक्ति भी प्रस्तुत की है। जिन कविताओं में उन्होंने अपने को गोपवाला तथा प्रभु विट्ठल को कृष्ण के रूप में प्रस्तुत कर प्रेमातुरता दिखलायी है, वे बहुत ही सरस एवं मर्मस्पर्शी हैं। उनकी कान्ता भक्ति का यह रूप बड़ा ही रमणीय है। सत्रहवीं शताब्दी के उस संत ने भक्ति के क्षेत्र में तथा मानवता के उत्थान में महनीय भूमिका अदा की।

तुकाराम के समय का समाज रूढ़ियों, दंभ तथा पाखंड से जर्जर हो चला था। सत्तासीन वर्ग का अत्याचार भी चरम सीमा पर था। एक अभंग में तुकाराम कहते हैं—'राजा प्रजा को पीडित करता है तथा तीर्थ स्थानों में भी असावधान (निर्दोष) जनता को लूटने में तनिक भी संकोच का अनुभव नहीं करता।' तुकाराम ने अज्ञान, अंध विश्वास एवं उत्पीड़न से ग्रस्त जनता को अपनी भक्ति की संजीवनी शक्ति प्रदान कर समाज की भी सेवा की। उन्होंने धर्म के ठेकेदारों की खूब खबर ली। इस प्रकार भक्ति के माध्यम से महाराष्ट्र प्रांत एवं राष्ट्र के विसंगत तत्वों को मिटाने के लिए भी उन्होंने जागृति की लहर फैलायी। तुकाराम कहते हैं—'नाम रूपी बीज की वृद्धि करना ही मेरा काम है। हां, यह अवश्य है कि परमार्थ सिद्धि के साथ समाज सुधार स्वयमेव हो गया।' उन्होंने तत्कालीन समाज में प्रत्येक व्यक्ति के लिए भक्ति को सुलभ बना दिया। सूरदास की भांति उनकी भक्ति में योग का अभ्यास या तप साधने की आवश्यकता नहीं है। तुकाराम की विरह पीड़ा (प्रभु से) से भरे उद्गार इस बात के द्योतक है कि उन्हें अभूतपूर्व संवेदनापूर्ण करुणाशील हृदय प्राप्त था।

□

बल ही जीवन है और दुर्बलता मृत्यु। बल ही परम आनन्द है, शाश्वत और अमर जीवन है। दुर्बलता निरन्तर भारस्वरूप है, दुःखस्वरूप है। दुर्बलता ही मृत्यु है। बचपन से ही तुम्हारे मस्तिष्क में रचनात्मक, बलप्रद और सहायक विचार प्रवेश करें।

—स्वामी विवेकानन्द

प्रेरक प्रसंग

सेवायज्ञ का एक निदर्शन

१४ जनवरी १९९६ का दिन था। संध्या के समय बम्बई मेल कलकत्ता के हावड़ा स्टेशन से निकली। दूसरे दिन सुबह लगभग साढ़े छह बजे गाड़ी रुक जाने के कारण नींद खुल गयी। चाय के लिए डिब्बे से नीचे उतरा, तो देखा कि गाड़ी एक गाँव के पास खड़ी है। दोनों तरफ पीले रंग की दो पट्टिकाएँ उस छोटे-से गाँव का नाम दर्शा रही थीं और इसी से ऐसा लग रहा था कि उस खाली जगह को स्टेशन का दर्जा प्राप्त है। गाँव का नाम था—जयरामनगर। गाड़ी के फिर से चलने के कोई लक्षण नहीं दिख रहे थे। खबर आयी कि वहाँ से पन्द्रह किलोमीटर दूर बिलासपुर स्टेशन पर भयंकर दंगा चल रहा है और वहाँ पूरे शहर में हड़ताल तथा कर्फ्यू है। यह भी सुनने में आया कि गाड़ी संध्या के छह बजे छूटेगी। इस पर यात्रियों का धीरज छूटने लगा। प्रत्येक व्यक्ति अपनी अपनी पेट-पूजा का प्रबन्ध सोचने लगा। साथ में लायी हुई सारी सामग्री समाप्त हो चुकी थी। देखते-ही-देखते गाड़ी का भोजनयान भी खाली हो गया। पन्द्रह डिब्बों की गाड़ी लगभग १२०० से १५०० यात्रियों को लेकर खड़ी थी। दोपहर के समय लगती हुई भूख की आहट पाकर यात्रीगण उस गाँव में जाकर खाद्य-पदार्थ तलाशने की सोचने लगे। परन्तु गांव तथा स्टेशन इतने छोटे थे कि उनमें भला क्या मिलने की सम्भावना थी? धीरे-धीरे छोटे बालक, वृद्ध तथा रुग्ण यात्रियों के मुख पर हवाइयाँ उड़ने लगी।

उस छोटे से गाँव के कुछ लोग यह सारी परिस्थिति देख रहे थे। उनके मन में क्या चल रहा था, यह भगवान ही जाने। परन्तु ग्यारह बजे के लगभग कुछ लोग आटे की बोरियाँ, सब्जियाँ, तेल के डिब्बे, कढ़ाइयाँ तथा अन्य चीजें लेकर स्टेशन पर आ पहुँचे। स्टेशन मास्टर से अनुमति लेकर उन्होंने बड़े अनुशासित ढंग से पूड़ियाँ तलना, सब्जी बनाना आदि कार्य आरम्भ कर दिया। हमारे मन में आया--चलो, अब सस्ता-महँगा जो भी हो, पेट भरने के लिए थोड़ा कुछ मिल तो जायगा। लगभग डेढ़ घंटों में ५०-६० स्त्री-पुरुषों ने दौड़-धूपकर पूड़ी-सब्जी आदि बना लिया और पत्तलों में उसके पैकेट तैयार करने लगे। इसके बाद उनके मुखिया ने मानो आदेश देते हुए कहा, "सभी लोग अपनी जगह पर चले जायँ, यहाँ किसी को भी कुछ नहीं मिलेगा।"

और उसके थोड़ी देर बाद ही पुरी-भाजी के पैकेट हर यात्री के पास पहुँचा दिए गए। इसके साथ ही पीने के पानी की भी व्यवस्था थी। अन्ततः डेढ़ बजे तक सारे यात्री भोजन करके तृप्त हुए। और गाँव के लोग? किसी की भी राह देखे बिना, अपना सारा सामान समेटकर चले गए—पैसों की तो बात ही क्या, किसी का धन्यवाद लेने के लिए भी वे नहीं ठहरे।

शाम के छह बजे समाचार आया कि दंगा और भी भड़क उठा है और गाड़ी के रात भर छूटने के आसार नहीं हैं। गाड़ी में बिजली नहीं थी, पानी कब का समाप्त हो चुका था और पेट में फिर से चूहे कूदने लगे थे। परन्तु एक बार फिर उन ग्रामवासियों ने हमें विस्मय में डाल दिया। परन्तु इस बार उन लोगों ने जो कुछ किया, उसने हमारे हृदय को कुछ अधिक ही गहराई तक स्पर्श किया। छोटे-छोटे बालक तथा महिलायें पेय जल की गगरियाँ और पुरुषगण चावल, सब्जियाँ आदि सामग्री लेकर पुनः उपस्थित हुए। उस समय रात के साढ़े आठ बजे होंगे। सुबह के ही समान अनुशासित ढंग से फिर खिचड़ी पकने लगी। उनके मुखिया गरम दूध से भरी दो बाल्टियाँ ले आये और कुछ बड़े लड़कों को उत्तरदायित्व सौंपते हुए बोले, "गाड़ी में जितने छोटे बालक रुग्ण तथा वृद्ध हैं, उन सभी को वे जितना भी माँगें दूध बाँट दो।" नौ बजे तक दूध बाँटा गया। दस बजे खिचड़ी तैयार हो जाने के बाद, वह स्वादिष्ट भोजन ग्रहण करके सभी तृप्त हुए।

सुबह से ही हो रहे इन मर्मस्पर्शी अनुभवों की अब चरम सीमा आ पहुँची थी, उदरपूर्ति के साथ-ही-साथ हमारे हृदय भी भर आए थे।

हमसे अब और नहीं रहा गया, इसलिए हमने उन मुखिया से पूछताछ की। आरम्भ में तो वे उद्धत-से लगे, उन्होंने थोड़ा टाल-मटोल भी किया, किन्तु थोड़ा पीछे लगने पर वे खुल गये। उन सज्जन का नाम था—हरिश्चन्द्र केड़िया। यह पूछने पर कि क्या यहाँ पर इस तरह की सेवा करनेवाली कोई संस्था है, उन्होंने 'नहीं' में उत्तर दिया। उसके उपरान्त कुछ अन्य प्रश्न पूछने पर जो कुछ ज्ञात हुआ, वह बड़ा ही उद्बोधक है। उसने बताया, "यह सारा कार्य ग्रामवासियों के द्वारा ही सम्पन्न हुआ है; चावल, आटा आदि तो हमारे पास रहता ही है। अब रही तेल की बात। वह गाँव की दुकानों से लाया गया। कहने को यहाँ मारवाड़ी लोगों के चार-पाँच और कुछ पंजाबी लोगों के भी परिवार हैं। हमारी चावल की मिल है। हम लोगों में आपसी एकता और समझ है। गाँव में किसी भी व्यक्ति के घर कुछ कार्य हो, तो हम सभी उसे मिल-जुल कर निपटाते हैं।"

बाद में ऐसे निःस्वार्थ कार्य के लिए उन्हें धन्यवाद देने की इच्छा व्यक्त करने का ही है। और यह सब कुछ गाँव के इन लोगों के सहयोग से हुआ। उन्होंने तो थोड़ा-बहुत कष्ट अवश्य उठाया, परन्तु उनसे भी कहीं अधिक कष्ट आप लोगों को सहने पड़े। आपकी यह यात्रा कब शुरू हुई और कब समाप्त होगी। आपके कष्टों की तुलना में हमारे कष्ट नहीं के बराबर है।" अब

अतएव, इस पर भला क्या कहा जा सकता है ?

लगभग इक्कीस घंटों के बाद, प्रातःकाल तीन बजे गाड़ी आगे बढ़ी। बिलासपुर भी पीछे छूट गया। रात बजे मैंने एक समाचार-पत्र खरीदा। वह दंगे, मन्त्रियों के त्याग तथा भड़कीले समाचारों से परिपूर्ण था। परन्तु उसमें जयरामनगर के उस सेवायज्ञ के सम्बन्ध में एक भी पंक्ति देखने को नहीं मिली। अब भविष्य में यदि कभी उस मार्ग से गुजरने का सुयोग हुआ, तो 'जयरामनगर' नाम के उस छोटे-से रामराज्य का वन्दन किये बिना मेरी यात्रा कभी पूरी न होगी।

— एक यात्री

कर्म और भाग्य

अपने निज के दोष दूसरे के मत्थे मढ़ना मनुष्य की स्वाभाविक दुर्बलता है। हम अपने दोष नहीं देखते।···साधारणतः मनुष्य अपने दोषों और भूलों को पड़ोसियों पर लादना चाहता है; यह न जमा, तो उन सबको ईश्वर के मत्थे मढ़ना चाहता है; और इसमें भी यदि सफल न हुआ, तो फिर 'भाग्य' नामक एक भूत की कल्पना करता है और उसी को सबके लिए उत्तरदायी बनाकर निश्चिन्त हो जाता है। परन्तु प्रश्न उठता है कि यह भाग्य नामक वस्तु क्या है और कहाँ रहती है ? हम जो कुछ बोते हैं, ऑवस वही तो काटते हैं। हम स्वयं अपने भाग्य के निर्माता हैं।···

अतएव अपने दोष के लिए तुम किसी को उत्तरदायी मत समझो, अपने ही पैरों पर खड़े होने का प्रयत्न करो, सब कामों के लिए अपने को ही उत्तरदायी समझो। कहो कि जिन कष्टों को हम अभी झेल रहे हैं, वे हमारे ही किये हुए कर्मों के फल हैं। यदि यह मान लिया जाय, तो यह भी प्रमाणित हो जाता है कि वे फिर हमारे द्वारा नष्ट भी किये जा सकते हैं।···तुम जो कुछ बल या सहायता चाहो, सब तुम्हारे ही भीतर विद्यमान है। अतः इस ज्ञानरूप शक्ति के सहारे तुम बल प्राप्त करो और अपने हाथों अपना भविष्य गढ़ डालो।

—स्वामी विवेकानन्द

बोध कथा

बोरा गुरु

—राकेश सिंह

संत जी का प्रवचन चल रहा था। एक मजदूर आश्रम के लिए चीनी का बोरा लादे हाल में प्रविष्ट हुआ। बोरा रखकर वह सभी लोगों को ढोंगी कह कर भाग गया। चार दिन बीत जाने पर वही मजदूर एक बोरा लादे आश्रम गया और बोरे को यथा स्थान रखकर उसे उसने सात बार प्रणाम किया। लोग उसे पहचान गए और पकड़ कर संत के पास लाए और बोले, "यही वह मजदूर है जो हमें ढोंगी कहकर भाग गया था और आज फिर यह आपको प्रणाम न करके बोरे को प्रणाम कर रहा है।"

संत ने पूछा तो मजदूर ने संत के भक्तों से पूछा, "क्या आप सभी उस दिन का प्रवचन मुझे सुना सकते हैं ?" लोग एक दूसरे का मुँह देखने लगे।

मजदूर ने प्रणाम करते हुए संत से कहा, "इसीलिए मैंने इन्हें ढोंगी कहा था, ये बैठे तो यहाँ होते हैं, परन्तु इनका मन यहाँ नहीं होता। ये आपकी बातें सुन तो लेते हैं, पर उस पर अमल नहीं करते।"

लोगों ने बोरे को प्रणाम करने का कारण पूछा तो वह बोला, "यह बोरा संत जी के पास आने का कारण बना और मुझे संतजी का प्रवचन सुनने को मिला। यह बोरा महान है। वही मेरे लिए गुरु बना न !"

(नवभारत टाइम्स से साभार)

भगवान् के लिए व्याकुलता किस प्रकार की होनी चाहिए ? जब किसी व्यक्ति की नौकरी छूट जाती है और वह नौकरी की खोज में एक दफ्तर से दूसरे दफ्तर भटकता फिरता है तब उसमें जैसी व्याकुलता होती है वैसी।

—माँ सारदा

समाचार एवं सूचनाएँ

रामकृष्ण मिशन को गाँधी शान्ति-पुरस्कार

कलकत्ता, १३ फरवरी। भारत के राष्ट्रपति श्री के० आर० नारायणन् ने आज विश्व विख्यात रामकृष्ण मिशन को वर्ष १९९८ का गाँधी शान्ति पुरस्कार प्रदान किया। यह पुरस्कार एस बर्ष पहली बार किसी संस्था को प्रदान किया गया। पुरस्कार वितरण समारोह कलकत्ता स्थित राजभवन के भव्य दरबार हॉल में सादगीपूर्ण किन्तु गरिमामम वातावरण में अम्पन्न हुआ। प्रथम पंक्ति में प० बंगाल के राज्यपाल श्री ए० आर० किदवई, मुख्यमंत्री श्री ज्योति बसु, भारत के मानव संसाधन विकास मंत्री डॉ मुरली मनोहर जोशी, रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के परम अध्यक्ष श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज, उपाध्यक्ष द्वय श्रीमत् स्वामी गहनानन्दजी एवं श्रीमत् स्वामी आत्मस्थानन्दजी महाराज तथा महासचिव श्रीमत् स्वामी स्मरणानन्दजी महाराज विराजमान थे। पूरा दरबार हॉल गण्यमान्य अतिथियों एवं रामकृष्ण मठ के वरिष्ठ साधुओं से भरा था।

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के तेरहवें अध्यक्ष श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज ने राष्ट्रपति के हाथों से पुरस्कार ग्रहण किया। पुरस्कार स्वरूप एक करोड़ रुपये, एक प्रशस्ति-पत्र और एक पट्टिका प्रदान की गयी।

समारोह के पश्चात संवाददाताओं द्वारा पूछे गये प्रश्नों के उत्तर स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज ने दिये। महात्मा गाँधी और रामकृष्ण मिशन के आदर्शों की समानता बताते हुए स्वामी रंगनाथानन्दजी ने कहा कि सेवा, त्याग और अहिंसा के आदर्श को रामकृष्ण मिशन और महात्मा गाँधी दोनों ने समान रूप से अपनाया। महात्मा गाँधी का राष्ट्र प्रेम स्वामी विवेकानन्द को पढ़कर कई गुना अधिक बढ़ गया था। सर्व धर्म समभाव का आदर्श भी दोनों ने समान रूप से ग्रहण किया था।

रामकृष्ण मठ, नागपुर का वार्षिकोत्सव एवं भक्त शिविर

नागपुर, २५ फरवरी। रामकृष्ण मठ, नागपुर के तत्वावधान में भगवान श्रीरामकृष्णदेव की १६४वीं जयन्ती के उपलक्ष्य में सार्वजनिक जयन्ती महोत्सव २० फरवरी से २४ फरवरी तक मठ प्रांगण में श्रद्धाभक्ति एवं उत्साहपूर्वक मनाया गया।

२० फरवरी को ह० भ० प० श्री मुकुन्द युवा देवरस (नागपुर) के कीर्त्तनों से महोत्सव का शुभारंभ हुआ। भगवान रामकृष्ण के जीवन तथा सन्देश पर रामकृष्ण मठ, चेन्नई से प्रकाशित अंग्रेजी मासिक पत्रिका, के सम्पादक स्वामी ब्रह्मेशानन्द ने हिन्दी में, स्वामी आत्मप्रियानन्द, प्राचार्य, विद्यामन्दिर, रामकृष्ण मिशन, सारदापीठ, बेलुड़ ने अँग्रेजी में तथा प्रा० श्री० मा० कुलकर्णी, सम्पादक जीवन विकास, नागपुर ने मराठी में व्याख्यान दिये। अध्यक्षता, मुम्बई हाईकोर्ट, नागपुर क्षेत्र के मा० न्यायमूर्ति श्री जयनारायण पटेल ने की। २२ फरवरी और २३ फरवरी को क्रमशः श्री माँ सारदा देवी तथा स्वामी विवेकानन्दजी का जीवन और सन्देश विषय पर व्याख्यान हुए। २३ फरवरी की सभा में श्री अमर रामाणी ने भी व्याख्यान दिया और अध्यक्षता प्रो० अनन्त अडुरकर ने की।

इन तीन दिनों तक आयोजित भक्त शिविर में प्रातः काल से संध्यारती तक आध्यात्मिक कार्यक्रम होते रहे। इनमें सेवा कार्य, शास्त्र पाठ, प्रवचन, भजन, कीर्त्तन, प्रश्नोत्तर, आदि का कार्यक्रम बड़ा ही प्रभावोत्पादक था। स्वामी ब्रह्मेशानन्दजी ने पातंजल योगसूत्र की व्याख्याएँ की। स्वामी ब्रह्मस्थानन्दजी, अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ, नागपुर, स्वामी ब्रह्मेशानन्द तथा स्वामी आत्मप्रियानन्दजी ने क्रमशः मराठी, हिन्दी और अंग्रेजी में पूछे गये प्रश्नों के सारगर्भित उत्तर दिये। डॉ० केदारनाथ लाभ, छपरा (बिहार) ने रामकृष्ण वचनामृत का पाठ किया। डॉ० केदार शिवहरे और स्वामी विपाप्मानन्दजी ने शास्त्रों का पाठ किया। शिविर का सफल संचालन स्वामी विपाप्मानन्दजी ने किया। स्वामी सर्वगानन्दजी तथा स्वामी ज्योतिर्मयानन्दजी के भजनों के गायन ने वातावरण को आध्यात्मिक रंग में रंग कर श्रोताओं को ओतप्रोत कर दिया।

२४ फरवरी की शाम को प्रायः ३ घंटों तक स्वामी सर्वगानन्दजी ने अपने गायन से श्रोताओं के हृदय को भक्ति-रस से सराबोर कर दिया। स्वामी ब्रह्मस्थानन्दजी ने नित्य सभा के अंत में धन्यवाद ज्ञापन किया।

□

भगवान् मनुष्य के सामने प्रकट होते हैं और बात करते हैं। तभी मनुष्य को उनका आदेश प्राप्त होता है। ऐसे आदेश प्राप्त गुरु के वाक्यों में अद्भुत शक्ति होती है। वे पहाड़ों को भी हिला देनेवाले होते हैं। कोरे भाषणों से क्या होता है? लोग दो-चार दिन उन्हें सुनते हैं और फिर भूल जाते हैं। लोग कोरे शब्दों को ग्रहण नहीं करते।

—श्रीरामकृष्णदेव

श्रीरामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम

रामकृष्ण निलयम, जयप्रकाश नगर
छपरा-८४१ ३०१ (बिहार)
दूरभाष : 06152-22639

स्वामी विवेकानन्द प्रतिमा-स्थापन

नम्र निवेदन

प्रिय महोदय/महोदया,

आपको यह सूचित करते हुए हमें परम प्रसन्नता हो रही है कि पश्चिमी जगत में भारतीय धर्म और अध्यात्म की विजय पताका लहराने के उपरान्त दिग्विजयी **स्वामी विवेकानन्द** के भारत प्रत्यागमन के शताब्दी-महोत्सव वर्ष की स्मृति में स्वामी विवेकानन्द की आदमकद कांस्य-प्रतिमा की स्थापना करने का शुभ संकल्प छपरा के नागरिकों ने लिया है। छपरा स्वामीजी के गुरुभाई स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज) के जन्म-जिला का मुख्यालय है।

मनुष्य-निर्माण, चरित्रगठन, सामाजिक न्याय, सर्वधर्म समभाव एवं भारत के पुनर्निर्माण के सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द की प्रतिमा एक विद्युत-तरंग का कार्य करेगी एवं वर्तमान पीढ़ी के लिए प्रेरणा का प्रकाशपुंज सिद्ध होगी—यह निर्विवाद है।

अतएव, आपसे हमारा नम्र निवेदन है कि इस याज्ञिक कार्य में उदारतापूर्वक दान देकर हमारे विनम्र प्रयास का सहभागी बनने की कृपा करें। इस महनीय कार्य में बड़े से बड़ा दान भी अल्प है और छोटे से छोटा दान भी महत्तम है।

स्वामीजी की कृपा आप पर निरन्तर बरसे—यही प्रार्थना है।

प्रेम और शुभकामनाओं सहित—

स्वामी विवेकानन्द चरणाश्रित
आपका
(डॉ० केदारनाथ लाभ)
सचिव

चेक या ड्राफ्ट रामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम, छपरा (बिहार) के नाम से भेजने की कृपा करें। नकद रुपये मनीआर्डर से भेजे जा सकते हैं।

एक निवेदन

भगवान श्री रामकृष्णदेव, माँ सारदा तथा स्वामी विवेकानन्द के चरण रेणु से तीर्थीकृत तथा स्वामी विवेकानन्द स्मृतिविजड़ित आकर्षण केन्द्र ज्योति लिंग बाबा वैद्यनाथ की इस पुनीत नगरी देवघर में रामकृष्ण संघ द्वारा परिचालित प्रथम शिक्षण संस्थान रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ की स्थापना सन् 1922 में हुई। भगवान श्री रामकृष्ण देव के अन्यतम पार्षद श्रीमत् स्वामी तुरीयानन्दजी महाराज से अनुप्राणित तथा स्वामी विवेकानन्द के शिक्षादर्शों पर आधारित 75 वर्ष पूर्व प्रारम्भ की गई यह शिक्षण संस्थान आज पूरे भारतवर्ष में विख्यात है। रामकृष्ण संघ के द्वितीय अध्यक्ष परमपूजनीय श्रीमत्स्वामी शिवानन्दजी महाराज ने भविष्यवाणी की थी—'इस विद्यापीठ के माध्यम से भविष्य में बहुत महान कार्य सम्पन्न होगा, इसका भविष्य बड़ा ही उज्ज्वल है।'

विद्यापीठ के बहुमुखी कर्म-प्रवाह में आर्थिक अवस्था से विपन्न 400 छात्रों के लिए आज 'विवेकानन्द बालकेन्द्र' मुख्य इकाई के रूप में कार्यरत है जिसमें निःशुल्क शैक्षिक तथा क्रीड़ा संबंधी एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था है। इस अनुन्नत वर्ग को ही नवीन भारत का आधार बनाते हुए स्वामीजी ने कहा था—

"एक नवीन भारत निकल पड़े। निकले हल पकड़कर, किसानों की कुटी भेदकर, मछुए, माली, मोची, मेहतरों की झोपड़ियों से। निकल पड़े बनियों की दुकान से, भुजवा के भाड़ से, कारखाने से, हाट से, बाजार से। निकले झाड़ियों से, पहाड़ों—पर्वतों को भेदते हुए।' इस वाणी को मद्देनजर रखते हुए 'सबसे पीछे पड़े हुए, सबसे नीचे दबे हुए' वर्ग को अपने विनम्र भाव से शिक्षित करने के प्रयास में 'विवेकानन्द बाल केन्द्र' अनवरत संलग्न है।

संप्रति इन छात्रों की यथोक्त शिक्षा के लिए एक स्थायी भवन की नितान्त आवश्यकता है जिसकी अनुमानित लागत 10 लाख रुपये है। अतः रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर की ओर से मैं इस महान एवं पवित्र कार्य को सम्पन्न करने के लिए आप उदारचेताओं से सहयोग की महती प्रार्थना करता हूँ। इति।

निवेदक

स्वामी सुवीरानन्द

सचिव

रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर

नोट :—1. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर के नाम से ही चेक या ड्राफ्ट भेजे जाएँ।

2. रामकृष्ण मिशन को दिया गया दान धारा 80 [G] के अनुसार आयकर मुक्त है।